तृतीय अध्याय

गुप्तजी के काव्य में पारिवारिक चित्रण तथा अन्य परिजन के पारस्परिक सम्बन्ध

माता, पिता और पुत्र

गुप्तजी के द्वारा चित्रित माता-पिता और पुत्र के सम्बन्ध के मध्य मुख्यत: स्वार्थ-वृत्ति न होकर धर्म-वृत्ति ही है। इन सम्बन्धों के मध्य स्नेह, वात्सल्य, ममता, श्रद्धा और निष्ठा आदि भावों के मध्य मूल प्रेरक उपकरण धर्म-भावना ही है। धर्म अनेक दृष्टियों से यहाँ महत्वपूर्ण है। यही वह मानदण्ड है जो विश्व को धारण करता है। किसी भी वस्तु का वह मूल तत्व जिसके कारण वह वस्तु वह है, तत्वत: धर्म ही है। वेदों में इस शब्द का प्रयोग धार्मिक विधियों के अर्थ में किया गया है। छान्दोग्य उपनिषद में धर्म के तीन स्कन्धों का उल्लेख किया गया है जिनका सम्बन्ध गृहस्थ, तपस्वी और ब्रह्मचारी के कर्तव्यों से है।

तैत्तिरीय उपनिषद भी धर्म के आचरण का संकेत करता है। वहाँ उसका अभिप्राय जीवन के उस सोपान के कर्त्तव्यों के पालन से होता है, जिससे कि हम गृहस्थ जीवन में विद्यमान हैं। माता-पिता और पुत्र के पारस्परिक सम्बन्धों के निर्वाह में गृहस्थ जीवन के तीनों कालों की सम्भावनाओं का समन्वितस्वरूप उपस्थित रहता है। इन सम्बन्धों की प्रथम अभिव्यक्ति हिन्दुओं के धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से होती है, जिनमें षष्ठी, क्षौरकर्म, उपनयन इत्यादि प्रमुख हैं। धर्म की धारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन सब अनुष्ठानों और गतिविधियों को ले आता है जो मानवीय जीवन को गढ़ती और बनाए रखती है। हमारे पृथक-पृथक हित होते हैं, विभिन्न इच्छाएँ होती हैं और विरोधी आवश्यकताएँ होती हैं, जो बढ़ती रहती हैं और बहुधा बढ़ने की दशा में ही परिवर्तित भी हो जाती हैं। उन सबको घेर घार कर एक समूचे रूप में प्रस्तुत कर देना हिन्दू धर्म का प्रयोजन होता है। हिन्दुओं ने विवाह को अपने आप में साध्य नहीं माना। यह तो आत्म-पूर्णता प्राप्त करने का सामान्य साधन जो मुख्यत: संतति के प्रजनन, पालन, शिक्षण तथा निर्माण में प्रतिफलित होता है। माता-पिता और पुत्र के बीच का यह सम्बन्ध हमारे जीवन का सर्वाधिक, वैयक्तिक और महत्वपूर्ण अंग है, जिनमें हम अपने पूर्ण रूप में जीवित एवं विकसित होते रहते हैं। उनके लिए यह सर्वथा स्वाभाविक है कि वे दूसरों के अनुभवों में हिस्सा बंटाएँ, एक दूसरे को

सम्बों और पारस्परिक विश्वास में आनन्द तथा सन्तोष का अनुभव करें। इस प्रकार के सम्बन्ध किसी क्षणिक या सीमित प्रयोजन को पूरा नहीं करते और न उनका अस्तित्व ही प्रत्यक्षत: समाज के लिए होता है, अपितु समाज, परम्परा, तथा विधियों का अस्तित्व ही इन सम्बन्धों के लिए होता है। प्रत्येक युग अपने विश्वासों और मान्यताओं के अनुसार परिवारों के सदस्यों के साथ होने वाले परिवर्तन - परिवर्द्धन करता आया है। यह युग धर्म है। परिवार के सदस्य युग के वातावरण में रहकर ही उससे ऊपर उठने का प्रयास कर सकते हैं। जन-जागरण और सामाजिक पुनर्निर्माण के समर्थक कवि मैथिलीशरण गुप्त व्यापक नैतिक सजगता का उद्घोष करते दिखाई पड़ते हैं। यह श्रद्धा और परम्परा की अपेक्षा वैज्ञानिकता और विवेक से काम लेते दिखाई पड़ते हैं। अतएव माता-पिता तथा पुत्र के बीच के सम्बन्धों की अभिव्यक्ति में भी इन्होंने प्राचीन कथानकों का बौद्धिक व्याख्यान प्रस्तुत किया। इनके सम्बद्ध वर्णन विवेक सम्मत हैं, जहाँ मानवता तथा राष्ट्रीयता की उद्भावनाएँ हुई हैं।

जहाँ कहीं स्वार्थ और संकीर्णता का शिकार होकर पुत्री या पुत्र अधर्म और अन्याय में प्रवृत्त होता है वहाँ गुप्तजी ने माता-पिता के द्वारा औचित्य का समर्थन और अन्याय का विरोध किया है। " जय भारत " में गुप्तजी ने महाभारत के द्रौपदी चीरहरण विषयक लोमहर्षक प्रसंग का जो वर्णन किया है उसमें मातृ-पितृ-पितृव्य की प्रतिक्रियाओं का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण हुआ है। वेदव्यास के महाभारत में चीर हरण का जघन्य कर्म गुरुजनों के समक्ष होता है। अत: उसकी भीषणता और भी बढ़ जाती है। गुप्तजी ने " जयभारत " में इस प्रसंग की अस्वाभाविकता को दूर करने के लिए सर्वप्रथम तो उस धिक्कृत सभा से उन भीष्म, द्रोण और विदुर को हटाया जो क्रुद्ध भीमसेन को तो शान्त करते हैं -

> "तमुवाच तदा भीष्मो द्रोणो विदुर एव च ।
> क्षम्यतामिदमित्येव सर्वं सम्भाव्यते त्वयि "॥

किन्तु दुष्कर्मी दुःशासन को रोकने में असमर्थ हैं। एक ओर तो इससे उन पुण्यात्माओं के आत्मसम्मान एवं गौरव की रक्षा होती है और दूसरे इस घोरकर्म की भीषणता भी अपेक्षाकृत कम हो जाती है। इस कुकृत्य का संवाद बिजली की तरह सर्वत्र फैल जाता है। अन्तःपुर में गान्धारी को जब यह ज्ञात होता है कि उसके पुत्र घोर जघन्य कर्म में लिप्त हो रहे हैं तो वह ग्लानि और क्षोभ से संतप्त होकर राज सभा की ओर चल पड़ती है। उधर द्रौपदी दुःशासन की प्रताड़ना करती है और भगवान का स्मरण करती है। इससे उसका चीर नहीं बढ़ जाता, किन्तु उसकी लाज रह जाती है :-

"सहसा दुःशासन ने देखा अन्धकार-सा चारों ओर,
जान पड़ा अम्बर-सा वह पट जिसका कोई ओर न छोर।
आकर अकस्मात् अति भय-सा उसके भीतर पैठ गया,
कर जोड़े हुए और पद काँपे, गिरता सा वह बैठ गया"।[1]

सभा में स्तब्धता छाई हुई है। निर्लज्जता, क्रूरता और नीचता का खुलकर विरोध करने का साहस उपस्थित किसी सभासद में नहीं हो रहा है। कुलवधू की लाज भरी सभा में लुटाई जा रही है। ऐसी ही परिस्थिति में उद्विग्न गान्धारी का सभास्थल में प्रवेश होता है। माता के भय से पुत्रों को घोर ग्लानि होती है और वे जघन्य कार्य के अवसान के लिए विवश होकर बाध्य हो जाते हैं :-

"दासी का कर धरे इसी क्षण देवी गान्धारी आई,
चौंक संभल कर पाप सभा ने पुनः सभ्यता-सी पाई
सबने उससे उसने सबसे यथायोग्य व्यवहार किया।
पृथक पदों पर पांचाली को हाथ उठाकर अभय दिया।"[2]

---

1 - मैथिलीशरणगुप्त -- जयभारत ; प्रथम संस्करण ; पृष्ठ - 138

2 - वही -- जयभारत ; प्रथम संस्करण सं0 2027 वि0 ; पृ0-148

गान्धारी आते ही सिंहिनी की तरह गरज उठी। सबसे पहले उसने अपने अन्ध पति धृतराष्ट्र को फटकारा। उसने कहा कि तुमने अपने कुल की लज्जा को कैसे लुटने दिया? आँखें नहीं हैं तो क्या, श्रवण-शक्ति का भी लोप हो गया? तुम्हारे जानते तुम्हारे पुत्र ही यह अपकर्म करें और तुम सहते रहो तो कितना बड़ा अन्याय तथा अधर्म है। आज यदि कुल की वधू को नंगा किया जा रहा है तो कल मैं ही कब तक बची रहूँगी? गान्धारी की यह फटकार सुनते ही धृत - राष्ट्र के मन की आँखें खुल गईं। उन्होंने स्वीकार किया कि दुर्वृत्त पुत्रों को शासन करना पिता का धर्म है। उस धर्म से च्युत होकर वे पाप के भाजन बने हैं जिसके परिणाम-स्वरूप रण का होना अवश्यम्भावी है और वीरों के रक्त की नदियों बहना भी उतना ही स्वाभाविक है :-

" देवि, ठीक ही कहती हो तुम, मैं अन्धा भी देख रहा,
अपने चारों ओर, अन्त तक अपनों का रण - रक्त बहा।"[1]

दुस्तर पुत्र-मोह में मज्जित धृतराष्ट्र ने अनुशासन प्रिय मातृहृदय की सीख को अन्तःकरण से समर्थन जताया और कहा कि कौरव-कुल की मुख लज्जा द्रौपदी को मेरे पास आने दो। वधू के पास आते ही उन्होंने आशीर्वाद दिया और निर्भय होने को कहा। कृष्णा के चरणों में नत होते ही धृतराष्ट्र ग्लानि और पश्चात्ताप के सागर में डूबने उतराने लगे। उन्होंने बहू से कहा कि वह निःसंकोच होकर जो चाहे माँग ले। द्रौपदी ने कहा कि आपको यदि देना ही अभीष्ट है तो मेरे स्वामियों को पराधीनता के बन्धन से मुक्त करा दीजिए। बहुत आग्रह करने पर भी द्रौपदी ने और कुछ नहीं माँगा और कहा कि मेरे पतियों में यदि पौरुष होगा तो वे सब कुछ पा जाएँगे। धृतराष्ट्र ने आपसी विरोधानल को शान्त करने के लिए बिना माँगे ही पाण्डवों का सबकुछ लौटा दिया। मन ही मन दुर्योधन मानों जल कर खाक हो गया और उसने क्षोभ-भरे स्वर में पिता को क्षमाशील होने के लिए उपालम्भ दिया। उसने कहा कि जाल

1- मैथिलीशरणगुप्त - जयभारत; तृतीयावृत्ति ; पृष्ठ - 149

में ऐसे शत्रु को छुड़वाकर आपने हमलोगों के हित का ख्याल नहीं किया। माता (की स्त्री-बुद्धि) के परामर्श में आकर आपने बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया:-

" बोला अलग पिता से वह यों- " तात, मृत्यु ही गति मेरी,
अम्बा की स्त्री बुद्धि, उसी ने हाय ! तुम्हारी मतिफेरी।
ऐसा फँसाया शत्रु हाथ से छूट हमें क्या छोड़ेगा,
भूल सभी उपकार तुम्हारा हमें मूल से गोड़ेगा । "[1]

दुर्योधन ने भय दिखलाकर पिता से अपने मनकी करवाली। धर्मराज से एक और पण होने की बात तय हो गई। हारने वालों को बारह वर्ष का बन-वास और एक वर्ष का अज्ञातवास निश्चित हुआ। पितृव्य विदुर ने यह सुनकर बहुत ही विषाद प्रकट किया। पिता धृतराष्ट्र यदि पुत्रों को अनुशासन में रख सके होते तो देश को महाभारत के दुर्भाग्य का सामना नहीं करना पड़ता।

बारह वर्ष के बनवास और एक वर्ष के अज्ञातवास के बाद पाण्डवों का प्रत्यावर्त्तन हुआ। उन्होंने शान्तिपूर्वक अपने अधिकार की माँग की। दुर्योधन ने अस्वीकार कर दिया। पाँचों भाइयों के लिए पाँच गाँव तो दूर की बात रही सूई की नोक के बराबर भी बिना युद्ध के भूमि देने को वह तत्पर नहीं हुआ। कई लोगों को मध्यस्थ बनाया गया। पाण्डवों की ओर से दूत बन कर और शान्ति का सन्देश ले कर स्वयं वासुदेव कृष्ण भी कौरवों की सभा में गये। दुर्यो-धन आदि से निराश होकर कृष्ण ने धृतराष्ट्र से कहा कि हे नृप, पाण्डव आज भी आप के प्रति पितृ भक्ति निभा रहे हैं। उन्होंने आप के वनवास और अज्ञात वास के आदेशों का पालन भी किया है और अब आप से न्याय और वात्सल्य की कामना करते हैं। पाण्डवों ने यह कहा है :-

"आप पिता हम पुत्र, आप प्रभु हम परिचायक,
कौन आप से अन्य हमारा बड़ा विचारक ।
स्वस्व-हेतु हम विकल कहीं निज धैर्य न खो दें,

1- मैथिलीशरणगुप्त - जयभारत - तृतीयावृत्ति ; पृष्ठ - 150

मन तक कसके क्यों न, स्वजन यदि काँटे बो हैं ।
हे तात, न आने दीजिए आने वाली आपदा ,
हम आज्ञाकारी आपके यथापूर्व ही हैं सदा ।"[1]

धृतराष्ट्र की सम्मति और सदिच्छा का आदर उनके बेटों ने नहीं किया। धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की लोलुपता को समझ कर मर्माहत हो गये। उन्होंने विदुर से कहा कि तनिक गान्धारी को बुला लो। वही इन कुविचारी पुत्रों को संभाले। कहीं-कहीं पिता की अपेक्षा माता के उपदेश का असर अधिक होता है। गान्धारी भी आकर कृष्ण के सम्मुख अपनी विवशता ही प्रकट करती है। वह इस बात को स्वीकार करती है कि गर्भावस्था में माता के मन के भावों का सन्तान पर स्थायी प्रभाव पड़ता है। माता यदि उन दिनों भूल कर गई तो उसे भविष्य में पछ-ताने के सिवा और कोई उपाय नहीं रह जाता :-

बोली इसी प्रकार वहाँ आकर गांधारी,
" मैं भी हे गोविन्द, अन्तत: अबला नारी।
पाण्डुसुतों को देख मुझे भी डाह हुई थी ।
एक-एक पर बीस-बीस की चाह हुई थी ।
दुर्योधन में विकसित हुई घनीभूत वह डाह ही,
क्या कर सकती हूँ मैं भला, भर सकती हूँ आह ही।"[2]

कर्ण के प्रसंग को लेकर मैथिलीशरणगुप्त ने बड़ी ही स्पष्टता से यह कहा है कि अविचारित कार्य करने वाली माता को सदैव पछताना ही पड़ता है । कुमारावस्था में कर्ण को जन्म देकर कुन्ती ने उतना बड़ा पाप नहीं किया जितना बड़ा पाप उसे त्याग कर किया। कर्ण जब माता कुन्ती के मुख से ही सारी कथा सुन लेता है तब वह अन्तर्द्वन्द्व के वात्याचक्र में पड़ जाता है। वह सोचता

1- मैथिलीशरणगुप्त - जयभारत ; तृतीय आवृत्ति 2027 वि0 ; पृ0 - 330
2- वही पृ0 - 333

है कि भाग्य की गति बड़ी निराली है। यहाँ गुप्तजी के द्वारा चित्रित माता और पुत्र के वार्त्तालाप की एक झाँकी द्रष्टव्य है :-

" माँ से माँ न कहे तो कुछ भी कहे पुत्र, वह गाली है,
किन्तु दोष दूँ कैसे तुझको जो स्वकर्म गुणशाली है।
सभी बड़ी-बूढ़ी तुम जैसी माताएँ ही हैं मेरी,
पर मेरी संदिग्ध जातता बजा चुकी अपनी भेरी। "[1]

कर्ण ने यह दिखाया और माना है कि उसके पालक उसके पिता और पालिका राधा उसकी माता हैं। उनके प्रति एवं अपने आश्रयदाता, मानदाता तथा मित्र दुर्योधन के प्रति भी उसके कर्त्तव्य हैं। कर्त्तव्यों का पारस्परिक संघर्ष होने पर नीति-वचन का सहारा लेना पड़ता है। तदनुसार कर्ण का निर्णय समीचीन ही माना जायगा। वह प्राण गँवाने को तत्पर है, पर माता को दुःखी बनाने को प्रस्तुत नहीं है। अतएव उसने माता की एक मार्मिक बात तो मान ही ली (जो कालान्तर में उसके प्राणों का घातक सिद्ध हुई)।

" जयद्रथ-वध " नामक खण्डकाव्य में रणधीर द्रोणाचार्य कृत दुर्भेद्य चक्रव्यूह को अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डव भेद सकने में असमर्थ थे। तब सोलह वर्ष का किशोर अभिमन्यु अकेला युद्ध करने को तत्पर हो जाता है। वह अपने पितृव्यों को सान्त्वना देता हुआ कहता है :-

" हे तात तजिए सोच को, है काम ही क्या क्लेश का?
मैं द्वार उद्घाटित करूँगा व्यूह बीच प्रवेश का? "[2]

अभिमन्यु आगे और कहता है कि व्यूह का भेद करके मैं समस्त शत्रुओं को मारकर अपने पिता की यशोराशि की वृद्धि करूँगा :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - जयभारत ; तृतीयावृत्ति, 2027 ; पृष्ठ - 341
2- मैथिलीशरणगुप्त - जयद्रथ-वध ; इकसठवाँ सं0, 2031 वि0 ; पृष्ठ - 7

" कर व्यूह भेदना आज त्यों ही वैरियों को मारके।
निज तात का मैं हित करूँगा विमल यश विस्तारके। "1

उपर्युक्त पंक्तियों में पुत्र का पिता के प्रति प्रेम द्रष्टव्य है।

पिता अर्जुन के हृदय में पुत्र के प्रति अगाध प्रेम है। अभिमन्यु ही उसका सर्वस्व था। चक्रव्यूह में अभिमन्यु की मृत्यु की घटना युधिष्ठिर के मुख से सुनकर वे अपना हृदय थाम लेते हैं। उनकी विचार-शक्ति कोसों दूर भाग जाती है। साधारण लोगों की बात क्या? इतने धीर वीर गंभीर अर्जुन भी पुत्र-स्नेह में व्याकुल हो जाते हैं और शोक-सागर में निमग्न हो जाते हैं। वे इस प्रकार विलाप करते हैं :-

" हा पुत्र! कहकर शीघ्र ही फिर मही पर गिर पड़े।
क्या वज्र गिरने पर बड़े भी दृढ़ रह सकते खड़े। "2

पितृ स्थानीय व्यक्तियों के मन में भी पिता की भाँति ही स्नेह उमड़ता है। अभिमन्यु के ज्येष्ठ पितृव्य महाराज युधिष्ठिर चक्रव्यूह की दुर्घटना के पश्चात् विलाप करते हुए कहते हैं :-

" निश्चय हमें जीवन हमारा आज भारी हो गया,
संसार का सब सुख हमारा आज सहसा खो गया।
हा! क्या करें? कैसे रहे? अब तो रहा जाता नहीं,
हा! क्या करें? किससे कहें? कुछ भी कहा जाता नहीं।
x x x
हे वत्स बोलो तो ज़रा सम्बन्ध छोड़ कहाँ चले?
इस शोचनीय प्रसंग में तुम संग छोड़ कहाँ चले? "3

1- मैथिलीशरणगुप्त - जयद्रथ-वध : इकसठवाँ सं० : 203। वि० : पृ० - 8
2- वही, पृष्ठ - 33
3- वही, पृष्ठ - 27,28

पिता-पितृव्य के लिए जीवन-संघर्ष इसलिए मधुर होता क्योंकि उनकी संतति उनके उपार्जित वैभव को भोगेगी। अपने पुत्र-पुत्रियों की भावी सुख-कल्पना में वे अलौकिक आनन्द पाते हैं। यह कल्पना उनके मन में प्रेरणा का अजस्र स्रोत बन कर उन्हें कर्म-संघर्ष में प्रवृत्त करती है। पाण्डव इसलिए अपने अधिकारों की रक्षा में प्रवृत्त नहीं हैं कि रण में जीतकर वे सुख-वैभव का भोग करेंगे। वे इसलिए समर में जुझ रहे हैं कि उनके पक्ष के जीत जाने पर संतति को धर्म और कर्त्तव्य-पालन के साथ ही सुख भोग का अवसर मिलेगा। अभिमन्यु की नृशंस हत्या के पश्चात् विलाप करते हुए धर्मराज के ये वचन हैं :-

" जिस राज्य के हित शत्रुओं से युद्ध है यह हो रहा,
उस राज्य को अब इस भुवन में कौन भोगेगा अहा।
हे वत्सवर अभिमन्यु! वह तो था तुम्हारे ही लिए,
पर हाय! उसकी प्राप्ति के ही समय में तुम चल दिए। "[1]

महाभारत की कथा पर आधारित शकुन्तला नामक काव्य में कवि ने पुरुष को कई स्थानों पर एक कर्त्तव्यपरायण एवं वात्सल्यभाव से पूर्ण पिता के रूप में चित्रित किया है। पिता कण्व शकुन्तला को अत्यन्त प्यार एवं दुलार से बड़ा करते हैं। ज्यों ही वह कुछ बड़ी होती है त्यों ही कण्व मुनि की चिन्ता भी बढ़ती है। वे उसे सुपात्र के हाथ में देकर ही निश्चिन्त होना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें भलीभाँति ज्ञात है कि पुत्री दूसरे की धरोहर है, वह पराई वस्तु है:-

" ज्यों ज्यों बड़ी हुई वह त्यों त्यों
पिता कण्व का प्यार बढ़ा,
किन्तु ब्याह का सोच हुआ फिर
जब यौवन का तार चढ़ा।

1- मैथिलीशरणगुप्त - जयद्रथ वध ; इकसठवाँ संस्करण , 2031 वि 0 ;
पृष्ठ - 27

भला कहाँ से वर आवेगा
इस बाला के योग्य यहाँ?
कन्यलता के योग्य अवनि पर
पारिजात की प्राप्ति कहाँ?"[1]

पिता कण्व अपनी पुत्री के विवाह के लिए वर खोजने लगते हैं और अन्त में-

"वे पुत्री के लिए चाहते थे वर जैसा -
निज सुकृत्यों से स्वयं पा लिया उसने वैसा"।

अत: कण्व पिता का मन आनन्द से गद्गद् हो उठता है। योग्य वर की प्राप्ति से जहाँ एक ओर पिता का मन-मयूर नाच उठता हैं वहीं दूसरी ओर उसके सदैव के लिए पितृ-गृह छोड़ने पर उन्हें दुख होता है। पुत्री के अभाव में समस्त गृह सूना-सूना सा लगता है। यद्यपि वे निश्चिन्त हुए तथापि कन्या का विरह उनसे सहा नहीं जाता :-

"शकुन्तले ! निश्चिन्त आज हूँ यद्यपि तुझसे,
सहा न जाता किन्तु विरह यह तेरा मुझसे।"[2]

कण्व पिता तपोवन की प्रत्येक वस्तु में शकुन्तला के स्मृति-चिह्नों को देखकर और अधिक उदास हो जाते हैं। वे पुत्री के नित्य नैमित्तिक कार्यों का स्मरण करने लगते हैं :-

"कौन मालिनी-तीर नीर लेने जावेगी?
कौन मछलियाँ चुगा-चुगाकर सुख पावेगी?
x x x
बिना कहे ही कौन अखिल आलसता त्यागे
रक्खेगा होमोपकरण वेदी के आगे?"[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त-शकुन्तला : अठारहवाँ संस्करण 2026 वि०; पृ० - 12
2- वही , पृष्ठ - 32
3- वही , पृष्ठ - 32

कन्या को विदा करते समय उनका कण्ठ भर आता है। उनका वात्सल्य-रूप से सना हृदय चीत्कार कर उठता है :-

" बेटी " कहकर किसे बुलाऊँगा मैं हारे!"[1]

प्रत्येक पिता की हार्दिक इच्छा यही रहती है कि उसकी पुत्री जिस घर में बहू बनकर जाए वहाँ अपनी निपुणता एवं कार्यकुशलता से समस्त गृह में सुख का वातावरण उत्पन्न करे एवं पुत्र-रत्न को जन्म देकर सुगृहिणी का पद प्राप्त करे। कण्व शकुन्तला को आश्वासन देते हुए कहते हैं :-

" जब तू प्रिय के यहाँ सुगृहिणी पद पावेगी,
गुरु कार्यों में लीन सदा सुख सरसावेगी।
रवि को प्राची-सदृश श्रेष्ठ सुत उपजावेगी
तब यह मेरा विरह-दुःख सब बिसरावेगी"।[2]

भारतीय पिता पुत्री को उसके स्वामी के घर विदा करते समय कुछ आवश्यक एवं अमूल्य उपदेश शिक्षा के रूप में देता है। उन उपदेशों को यदि कन्या मानकर चले तो वह सुगृहिणी के पद को तुरन्त प्राप्त कर लेती है। पिता कण्व पुत्री को उपदेश देते हुए कहते हैं कि ससुराल में गुरुओं का सम्मान करना, उनकी सेवा करना, सौतों के साथ हमेशा सखियों का सा व्यवहार करना, पति यदि तुम्हारा अपमान करे तो भी तुम उन पर मान मत करना, उनके अल्प प्रेम से ही तुम सन्तुष्ट रहने का प्रयत्न करना :-

" गुरुओं की सम्मान सहित सुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान, मान मत कीजो पति से;
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से"।[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त- शकुन्तला; अठारहवाँ सं0; 2026वि0; पृष्ठ - 33
2- वही, पृष्ठ - 34, 3- वही, पृष्ठ - 31

वे पुत्री को आशीर्वाद देते हैं :-

तुझको पति के यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा ।
सार्व-भौम पुरुपुत्र हुआ था उसके जैसे -
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे -[1]

स्वामी के घर जाते समय एवं पिता से विदा लेने के अवसर पर पुत्री का दुःख भी पिता से कुछ कम नहीं होता। जिन्होंने उसे शिक्षापिता कर, वात्सल्य एवं देकर इतना बड़ा किया उन्हें फिर कब देख पायेगी यही चिन्ता शकुन्तला को खाए जा रही है :-

" होंगे कब हे तात, तपोवन के दर्शन फिर ! "
इतना कहकर हुई दुःख से वह अति अस्थिर।[2]

पुत्री को अत्यन्त कातर देखकर पिता कण्व का कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। फिर भी वे किसी तरह अपने को सभाल कर पुत्री को सांत्वना देते हैं:-

" रहकर चिरदिन भूमि सपत्नी, नृप की रानी,
रुके न जिसका मार्ग पुत्र पाकर कुलमानी ।
करके उसका व्याह, राज्य सिंहासन देकर-
आवेगी पति-संग यहाँ फिर तू यश लेकर।[3]

भारतीय समाज में पिता का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्तजी ने दिखाया है कि उसका जीवन कर्त्तव्य एवं उत्तरादायित्व से पूर्ण होता है। संतति के प्रति उसके हृदय में अगाध स्नेह, वात्सल्य, क्षमा, दया आदि भाव भरे रहते हैं। पुत्र हो या पुत्री दोनों का उचित रूप से पालन-पोषण करना,

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - शकुन्तला; अठारहवाँ सं0: 2026 वि0: पृष्ठ - 31
2- वही, पृष्ठ - 33
3- वही, पृष्ठ - 34

शिक्षा देना तथा उनको स्वावलम्बी बनाना, विवाह कराना आदि पिता का ही कर्त्तव्य होता है। परिवार के सभी सदस्यों का वह श्रद्धेय होता है। परिवार में प्रत्येक कार्य करने से पहले उनकी राय ली जाती है। उसके आचरण का प्रभाव उनकी संतति पर अवश्य पड़ता है। अतः पुरुष को पिता के रूप में अत्यन्त संयत, धीर एवं सदगुणों से युक्त होना चाहिए। गुप्तजी ने अपने प्रायः सभी काव्यों में पुरुष को कई स्थानों पर पिता के रूप में अंकित किया है। 'रंग में भंग ' नामक काव्य में लालसिंह नामक नृप भी सहृदया, रूपवती एवं प्रभावती कन्या के पिता के रूप में हमारे समक्ष आते हैं :-

" लाल सिंह नरेन्द्र के सम्पूर्ण-सदगुण-संयुता
थी हिमाचल-नन्दिनी सी एक अति प्यारी सुता
ज्यों अलौकिक रूप में थी वह विशेष प्रभावती,
थी विदित त्यों ही सुहृदया शील-मूर्ति, महामती।"[1]

रंग में भंग हो जाने पर वर सिंह अपनी विधवा पुत्रवधू के पास आकर सांत्वना देने लगे। उन्हें अपने वीरपुत्र की मृत्यु का शोक तो था ही किन्तु पिता के कर्त्तव्य का पालन करना भी आवश्यक था। पुत्रवधू ने उनकी बात न सुनी और सती हो गईं। राजधानी लौटने पर राणा ने कृत्रिम बून्दी दुर्ग का निर्माण कराया और उसे तोड़ने कुछ सैनिकों के साथ आ गए। बून्दी निवासी वीर कुम्भ ने जब देखा कि उसकी मातृभूमि का तिरस्कार हो रहा है तो वह सह न सका। पुत्र धर्म के निर्वाह के लिए उसने जन्मभूमि की मर्यादा की रक्षा को अपना सर्वोपरि कर्त्तव्य समझा। उन्होंने राणा को सावधान करते हुए कहा कि वह मातृभूमि बूँदी का अपमान नहीं सह सकता। सेवक होने पर भी उसने अपना धर्म राजा के हाथों नहीं बेचा था, क्योंकि धर्म के सम्बन्ध में राजा और रंक सभी समान हैं। अतएव वह प्राणों को अर्पित करके भी जननी जन्मभूमि की रक्षा करने के लिए राजा से लोहा लेने को तत्पर हो जाता है।

1- मैथिलीशरणगुप्त - रंग में भंग ; प्रथम सं0 ; 2026 वि0 ; पृष्ठ - 4

वह कहता है :-

"स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्मभूमि कही गई,
सेवनीया है सभीकी वह महा महिमामयी
फिर अनादर क्या उसीका मैं सहा देखा करूँ?
भीरु हूँ क्या मैं अहो! जो मृत्यु से मन में डरूँ?
तोड़ने हूँ क्या चले नकली किला मैं मानके,
पूजते हैं भक्त क्या प्रभु-मूर्त्ति जड़ जाने के?
भ्रान्त जन उसको भले ही जड़ कहें अज्ञान से,
देखते भगवान को धीमा न उसमें ध्यान से।।"[1]

अन्त में राजकीय सेना से लड़ते हुए उस वीरको वीरगति प्राप्त होती है। कीर्तिध्वनित हंस को उज्ज्वल करते हुए उसने योग्य सुपुत्र कीभाँति मातृ-भूमि हूँदी को कृतकृत्य कर दिया :-

"उष्ण शोणित-धार से धरणी वहाँ की धो गई,
कुम्भ के इस कृत्य से कृतकृत्य हूँदी हो गई।
इस तरह, उस वीर ने प्रस्थान सुरपुर को किया,
राजपूतों की धरा को कीर्तिध्वनित कर दिया।"[2]

वन-वैभव नामक खण्डकाव्य में गुप्तजी ने " धृतराष्ट्र " का पिता के रूप में सुन्दर चित्र खींचा है। दुर्योधन अपने हठी स्वभाव के लिए प्रसिद्ध हैं, फिर भी शकुनि मामा के यह कहने पर कि चलो वन को चलें वहाँ मृगया भी करेंगे साथ ही तुम्हारे चचेरे भाई, जो जुए में सब कुछ हार कर अब विपिन में मारे-मारे फिर रहे हैं, उनकी खोज खबर भी ले आवेंगे। दुर्योधन इस मृगया की बात सुनकर फूला नहीं समाते। फिर भी पिता की आज्ञा आवश्यक जानकर

1- मैथिलीशरणगुप्त- हंग में भंग : प्रथम सं० : 2026 वि० : पृष्ठ - 32
2- वही , पृष्ठ - 34

उनके समक्ष जाते हैं :-

कहा दुर्योधन ने - " हे तात,
लगी है कुछ हिंसों की घात।
विपिन में है उनका उत्पात,
जहाँ है अपना पशु - संघात।
करेंगे हम मृगया वन में,
बोध यात्रा की है मन में।"[1]

पुत्र की बात सुनकर उन्हें पिता को कष्ट होता है, क्योंकि वहीं वन में उनके भाई के पुत्र पंच पाण्डव बड़ा ही कष्टमय जीवन-यापन कर रहे हैं, कौरव के साथ वे जुए में अपना सर्वस्व हार कर जंगल में दुख के दिन बिता रहे हैं। पिता धृतराष्ट्र पाण्डवों की शक्ति से परिचित हैं। उन्हें भय है कि कहीं दुर्योधनादि को देखकर वे भड़क उठें, उनका क्रोध जग जाए तो क्या होगा? वे पुत्र दुर्योधन की मृगया की बात को टाल न सके, उन्होंने सहमति दे तो दी, पर पिता-सुलभ सीख देनी भी न भूले, क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि पाण्डवों से उलझ कर पुत्र की दुर्गति हो, तभी तो वे कहते हैं :-

"देख कर तुमको सम्मुख हाय।
क्रोध उनका न कहीं जाग जाए।
रहेगा तो फिर कौन उपाय?
न समझो तुम उनको असहाय।
शक्ति उनकी है सबको ज्ञात,
सुरों में भी है यश विख्यात।"[2]

कुणाल देवानामप्रिय अशोक का अनुरूप पुत्र था। सम्राट अशोक अपने बुद्धि-वैभव से सर्वोपरि इस पुत्र को प्राणों से ज्यादा चाहते थे। कुणाल पिता

1- मैथिलीशरणगुप्त- वन-वैभव ; 2025 वि० ; पृष्ठ-5
2- वही, पृष्ठ - 5

के आज्ञाकारी पुत्र थे। पिता के आदेश को वे वेदवाक्य के समान अकाट्य मानते थे। एक बार सीमाप्रान्त में भीषण विद्रोह उठ खड़ा हुआ। सम्राट अशोक उन दिनों कुछ अस्वस्थ थे। वे स्वयं उस विद्रोह स्थल पर जाने में असमर्थ थे। इसके अतिरिक्त कलिंग युद्ध के पश्चात् रक्तपात के व्यापार से वे विरत थे। राजा होने के कारण उन्हें धर्मराज्य ही श्रेय एवं प्रेय था। वे इस प्रकार का जन चाहते थे जिसमें शारीरिक बल की अपेक्षा बुद्धि अधिक हो, जो अपनी बुद्धि के प्रभाव से ही शान्ति स्थापित करने में सफल होसके। अतः इस कार्य के लिए पुत्र कुणाल ही प्रथम माना गया। परिणामस्वरूप महाराज ने उसको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा। पुत्र कुणाल पिता के आदेश को शिरोधार्य करके निकल पड़े एवं सीमाप्रान्त के विद्रोह को शान्त करने में भी सफल रहे। अपने पिता पर उन्हें बड़ा गर्व है। वे कहते हैं :-

धर्मराज्य ही निजराजा को है अभीष्ट एकान्त,
दुर्बल नहीं कलिंग-विजेता, यह विशिष्ट विक्रान्त।
नहीं चाहता रक्तपात निज दया-प्रेम-सिद्धान्त,
बाह्य विजन में वैरवृद्धि ही, रहे विश्व विश्रान्त।
डालें यहाँ न भेद विदेशी, स्वार्थभाव से भ्रान्त,
मर्यादा के ही रक्षक हों सबके सीमाप्रान्त।[1]

कुणाल मातृ-भक्त भी थे। विमाता के हृदय में पुत्र कुणाल के प्रति विद्वेष एवं ईर्ष्या की भावना थी। वह किसी न किसी तरह कुणाल को कष्ट पहुँचाना चाहती थी। इधर कुणाल की सौतेली माँ ने रुग्ण-दशा में महाराज अशोक की ऐसी परिचर्या की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने अपनी राजमुद्रा उसे सौंप दी। एक दिन उन्होंने उसी राजमुद्रा से अङ्कित एक आदेश-पत्र सीमाप्रान्त के अधिकारी के नाम भिजवाया, जिसमें कुणाल को अन्धा करके निष्कासित कर देने का आदेश था। मातृ-भक्त कुणाल को जब इस दण्ड के बारे में

1- मैथिलीशरणगुप्त - कुणालगीत ; प्रथमावृत्ति ; 2013 वि० ; पृष्ठ -12

पता चला तो उनका हृदय माँ के प्रति मलिन नहीं हुआ, अपितु जिस प्रकार उन्होंने पिता का आदेश शिरोधार्य किया था उसीप्रकार उन्होंने सहर्ष माता का यह आदेश भी शिरोधार्य किया। अन्धा होकर वह भिक्षाटन को निकल पड़ा। इससे पता चलता है कि वे माता-पिता दोनों के प्रति समानरूप से सदय हैं। उनका क्षमाशील हृदय माता के इस अन्याय व्यवहार को यह सोचकर क्षमा कर देता है कि वह अबला है एवं ईर्ष्या, द्वेष तथा विकार से ग्रस्त है। वे अपने हृदय को दोनों में से किसी एक के प्रति भी मलिन होने देना नहीं चाहते :-

हृदय, तू दोनों ओर निहार,
तनय, सदयता से ही माँ का दिया दण्ड स्वीकार।
वे अबला हैं और प्रबल हैं ईर्ष्या-द्वेष-विकार ;
नहीं पुनीता प्रजावती सब, जीता है संसार।
सिद्ध हुआ कैकेयी से भी उनका दान उदार,
मिला राम से तुझे अधिक ही वाह्य विषय परिहार।"[1]

माता का आदेश पाकर कुणाल तनिक भी विचलित नहीं होते हैं। वे अपने सरोज तुल्य नयन को फोड़ लेते हैं। उनकी पत्नी पति की इस अवस्था से अत्यन्त पीड़ित है। उसके करुण क्रन्दन को सुनकर कुणाल उसे समझाते हैं कि तुम यह क्यों कहती हो कि आत्मघात करते हुए मुझे ग्लानि क्यों न हुई? तुम स्वयं सोचो, माता के आदेश को मैं कैसे ठुकराता? भले ही उनकी तरफ से मेरे प्रति यह अशुभ कृत्य क्यों न हो, पर हैं तो वे माता ही। माँ की आज्ञा को मानकर मैंने उनको पश्चात्ताप करने का सुयोग दिया है, तुम्ही बताओ मैं क्या करता? क्या मैं माँ की आज्ञा का उल्लंघन कर सेना लेकर उनसे लड़ता? पूरा सोचोतो सही। इससे कितने प्राणों का नाश होता, किसके जीवन-धन की हानि होती? :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - कुणालगीत ; प्रथमावृत्ति ; 2013 वि० ; पृष्ठ - 13

" क्या कहती हो मेरी रानी।
विना विचारे ही क्या मैंने माँ की आज्ञा मानी।
कनुष कृत्य को सफल बनाया,
अनौचित्य को उचित जनाया,
आत्मघात करने में भी क्यों हुई न मुझको ग्लानी।
क्या कहती हो मेरी रानी।
सुनूँ तुम्हींसे मैं क्या करता;
क्या दल बाँध धनुःशर धरता
उसमें किसके जीवन्धन की होती कितनी हानी;
क्या कहती हो मेरी रानी;
मैंने जो यह मार्ग लिया है,
माँ को सदय सुयोग दिया है ;
करके वे अनुताप शुद्ध हों, बहे पाप बन पानी।"[1]

माता की आज्ञा से कुणाल ने अपनी आँखें फोड़ ली एवं निष्कासित होकर अपनी पत्नी कांचनमाला के साथ भिक्षाटन पर निर्भर हो इधर-उधर घूमते हुए वे एक बार पाटलिपुत्र पहुँचे और रात को उनके गीत की करुण ध्वनि अशोक को सुनाई पड़ी। सम्राट पागल-सा प्रासाद से निकलकर अपने पुत्र के आगे आ खड़े हुए। पिता-पुत्र दोनों पुनः मिले। पिता के कोमल स्पर्श से पुत्र की समस्त ग्लानि दुर हो गई। प्रसिद्ध है पिता के पुण्य से उन्हें नयी दृष्टि मिली। वे अपनी पत्नी से कहते है :-

" प्रिये, प्रिये, कैसा आभास।
अनजाने आ गये घूमते हम निज पुर के पास।

1- मैथिलीशरणगुप्त - कुणालगीत ; प्रथमावृत्ति, 2013 वि० ; पृष्ठ - 54

"गीत एक दो मैंने गाये,
खिंच-से तातचरण ये आये।
आँखों में हैं आँसू छाये
मुख है हाय। उदास।
प्रिये, प्रिये, कैसा आभास।
ज्योंही मुझे इन्होंने परसा,
निशि में भी मानो दिन दरसा।
जल ही नहीं दृगों से बरसा,
हुआ प्रकाश-विकास।
प्रिये, प्रिये कैसा आभास।"[1]

कुणाल विमाता के इस अत्याचार का बदला नहीं लेना चाहते, वरन वे पिता को विमाता का अपराध क्षमा करने के लिए बाध्य करते हैं :-

"माँगू मैं क्या, मिला स्वयं सब,
कैसे हो सन्तोष इन्हें तब?
माँ को क्षमा करें ये बस अब,
पूरे मेरी आस।
प्रिये, प्रिये, कैसा आभास।"[2]

[illegible]

"वकसंहार" नामक खण्डकाव्य में कवि ने पाण्डवों के हृदय में माता के प्रति अनुरक्ति का सजीव चित्रण किया है। वन में रहकर पाण्डव भिक्षार्थ

1- मैथिलीशरणगुप्त - कुणालगीत ; प्रथमावृत्ति, 2013 वि० ; पृष्ठ - 132
2- वही, पृष्ठ - 133

जाते हैं एवं भिक्षान्न लाकर सर्वप्रथम अपनी माता को देते हैं :-

" भिक्षान्न ले जाते हैं स्वयं,
माँ को खिला खाते हैं स्वयं।"[1]

मातृभक्त पुत्र माता के दुःख का भंजन करना अपना कर्त्तव्य मानता है। एक-विषयक प्रसंग में जब सारा परिवार दुःखी है तब पितृभक्त पुत्र स्वयं एक राक्षस का बलि बनना चाहता है :-

" बलि दो मुझे माँ जन्म मेरा हो सुफल।"[2]

माता चाहती है कि पुत्र तथा पुत्री को उचित आयु में शिक्षा प्राप्त हो जाय तथा वे विवाह करलें। ब्राह्मणी के कथन से स्पष्ट है कि वह सुत तथा सुता की शिक्षा के विषय में चिन्तित है :-

" सुत की सुशिक्षा का, सुता के ब्याह का
कैसे करूँगी सिर पड़े
ये कार्य मैं बड़े-बड़े।"[3]

जननी संतान को जन्म देकर कुल की वृद्धि करती है। ब्राह्मणी कहती है :-

" मैं सुत-सुता भी जन चुकी,
कुल-वर्धिनी हूँ बन चुकी।"[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - वकसंहार ; प्रथम सं0, 2021 वि0 ; पृष्ठ - 9
2- वही, पृष्ठ - 36
3- वही, पृष्ठ - 13
4- वही, पृष्ठ - 14

जननी अपनी सन्तान का लालन-पालन अत्यन्त स्नेह से करती है। ब्राह्मण कन्या कहती है :-

" माँ के बिना बच्चा कहाँ बच पायगा?" [1]

पुत्री का जन्म आपत्ति के समान ही माना जाता है। वह चिन्तामयी चिता के समान होती है। ब्राह्मण परिवार की कन्या के मुख से कवि ने इस तथ्य का उद्घाटन किया है :-

" चिन्तामयी मानो चिता
होती सुता है हे पिता;
आपत्ति सी है जन्म लेती गेह में।
सम्पत्ति होने दो मुझे,
यह दुःख खोने दो मुझे;
मरने मुझे दो आज अपने स्नेह में।" [2]

पुत्री त्याग के ही लिए होती है; वह धरोहर होती है। शील-सद्गुण-संयुता ब्राह्मण कन्या पिता-माता से कहती है कि आज हो या कल मुझे किसी दूसरे के घर जाना ही है, क्योंकि इस समाज में कन्या दान की वस्तु है। तो क्यों न आज ही मैं बक राक्षस के पास जाकर तुम सबके प्राणों की रक्षा करूँ?

" कल हो कि आज कि हो कभी,
पर जानते हैं यह सभी,
है दान की ही वस्तु कन्या लोक में।
तो त्याग तुम मेरा करो,
आपत्ति यों अपनी हरो।
मैं भी बनूँ कुल-कीर्ति-धन्या लोक में।" [3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - वकसंहार ; प्रथमसं०, 2021 वि० ; पृष्ठ - 15
2- वही, पृष्ठ - 15, 3- वही, पृष्ठ - 15

परिवार में पुत्री का महत्वपूर्ण स्थान है। वह माता-पिता के कष्ट को दूर करना अपना परम कर्तव्य मानती है। गुप्तजी के काव्य में नारी का कन्या के रूप में चित्रण हुआ है। वह कन्या के रूप में परिवार के दुःख-भार को दूर करना चाहती है। वक के पास वह स्वयं अपने प्राणों को अर्पित कर राक्षस का आहार बन जाना चाहती है। वह मानती है कि उसके त्याग पर परिवार के सदस्यों को ग्लानि से ग्रस्त होने का कोई कारण नहीं। वह वृहत्तर स्वार्थ के लिए आत्मबलिदान करने का पुण्य प्राप्त कर रही है। एक उसके तुच्छ प्राणों के त्याग के विनिमय में परिवार के अनेक महत्वपूर्ण व्यक्तियों की रक्षा हो जाती है :-

" पर मैं मरूँ तो ग्लानि क्या,
सब तो बचेंगे हानि क्या?
इससे मुझे बलि आज होने दो न क्यों?
लघु लाभ का क्यों लोभ हो,
गुरु हानि का जो क्षोभ हो।
लघु हानि कर गुरु लाभ हो तो लो न क्यों?" [1]

माता के कष्टों के निवारण करने में यदि पुत्र को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़े तो वह सहर्ष तत्पर हो उठता है। सार्थक पुत्र अपने माता-पिता के दुःख का भंजन करता है। वह उनके कष्टों को दूर करना अपना धर्म समझता है। " वकसंहार " नामक काव्य में वक-विषयक प्रसंग में जब सारा परिवार दुःख के सागर में डूबा हुआ है तब कुन्ती के प्रति पुत्र के रूप में सहदेव के वचन अत्यन्त उचित जान पड़ते हैं :-

" बलि दो मुझे माँ, जन्म मेरा हो सुफल।" [2]

1- मैथिलीशरणगुप्त - वकसंहार ; प्रथम सं0, 2021 वि0 ; पृष्ठ - 16
2- वही, पृष्ठ - 36

इसी तरह पार्थ भी वक से युद्ध कर लोगों के दुःख दूर करने के लिए माँ से विनम्र निवेदन करते हैं :-

" माँ, तुम मुझे भेजो, अहा।
सब जानते हैं पार्थ मेरा नाम है।"[1]

वह माँ की इच्छा जानते ही उसकी पूर्ति के लिए व्याकुल हो उठता है और अपना जीवन तक अर्पित कर देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। यही दशा अन्य भाइयों की भी है। वे एक-एक कर अपने को अर्पित करने के लिए अग्रसर हो उठते हैं। अंत में भीम असुर-संहार के लिए माता कुंतीसे अनुमति पा सकने में सफल होते हैं।

वक-संहार के माध्यम से गुप्त जी ने हिन्दुओं के सम्मिलित परिवार की उत्कृष्टता की अद्भुत झाँकी प्रस्तुत की है। परिवार का प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के लिए त्याग करना चाहता है और एक दूसरे की रक्षा के लिए अपने को अर्पित कर देना चाहता है। छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति में विलम्ब या असफलता को देखकर आज के बिखरते हुए परिवारों की तरह ब्राह्मण के परिवार के सदस्य सौहार्द्र के पवित्र बंधन को छिन्न कर पलायन नहीं कर जाना चाहते। वे जानते हैं कि अभाव, विवशता और संकट के समय में ही परिवार के सदस्यों के प्रेम की परीक्षा होती है। पति-पत्नी का, पिता-पुत्र का, माता-पुत्री का तथा भाई-बहन का प्रेम तभी कसौटी पर कसा जाता है जब उनके ऊपर कोई अनाशंकित विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है। सुख और समृद्धि के दिनों में तो सभी एक दूसरे के सहायक और प्रेमी होते हैं, किन्तु दुःख की घड़ियों में पीड़ा के सहभागी होनेवाले लोगों की संख्या कम ही होती है। हिन्दुओं के परिवार की रचना और परम्परा कुछ ऐसी है कि वह अनायास ही सदस्यों के मन और प्राणों का उदात्तीकरण कर देती है। परिवार के सदस्य क्या? उनके आश्रित और अतिथि

1- मैथिलीशरणगुप्त - वकसंहार ; प्रथम सं0, 2021 वि0 ; पृष्ठ - 37

भी अपने को उनका अंग मानने पर विवश हो जाते हैं। इस बात की पुष्टि कर्ण-संहार में चित्रित माता कुन्ती और पंचपाण्डवों की प्रतिक्रिया से भलीभाँति हो जाती है।

वीरपुत्र अपने पिता के अपमान को अपना अपमान समझते हैं। वे पिता के अपमान का बदला अपना तन-मन-धन न्योछावर करके भी लेने को तत्पर रहते हैं। पिता के शत्रु को वे अपना शत्रु समझते हैं। गुप्तजी के " विकट भट " नामक खण्डकाव्य में इसका ज्वलन्त प्रमाण द्रष्टव्य है। जोधपुर नरेश विजयसिंह ने एकबार पोकरणवाले अत्यन्त विश्वासी एवं वीर सरदार देवीसिंहजी से पूछा कि यदि तुम मुझसे रूठ जाओ तो क्या करो, योद्धा देवीसिंह सहज सामन्तीय उत्तर देते हुए कहते हैं, क्षमा कीजिए स्वामी, आप मेरे अन्नदाता हैं, मैं आपका सेवक हूँ। आपके दिए हुए टुकड़े पर मेरा जीवन टिका हुआ है। मैं नमकहराम नहीं हूँ, किन्तु स्वामी के द्वारा बार-बार एक ही प्रश्न के दोहराए जाने पर वृद्ध ठाकुर के आत्मसम्मान पर ठेस लगती है। उन्हें क्रोध आ जाता है। उनके सौम्य, शान्त एवं गौर गात्र पर लाली दौड़ जाती है। वे उत्तर देते हैं - पृथ्वीनाथ,यदि मैं रूठ जाऊँ तो जोधपुर की क्या बात, क्योंकि वह तो मेरी कटारी की पर्तली ही में है, मैं चाहूँ तो समस्त मारवाड़ को उलट कर रख दूँ। राजा इस उत्तर को सुनकर क्रोधाभिभूत हो उठते हैं एवं दूसरे दिन अभिसन्धि कर वीर ठाकुरकी जीवन-लीला शेष कर देते हैं। पिता-पुत्र का घनिष्ट सम्बन्ध होता है। पिता की इस आकस्मिक मृत्यु का कारण सुनते ही पुत्र सबलसिंह का खून खौल उठता है। वेराजा से अपने पिता का बदला लेने को तत्पर हो उठते हैं :-

" हाय ! पिता, ऐसा परिणाम हुआ आपका।
किन्तु आपका ही पुत्र हूँ मैं, यदि राजा के
सामने प्रणत होऊँ तो मैं नत होऊँगा
अपनी ठकुरानी आगे, यही प्रण है।
आता है चढ़ाई कर पोकरण, आने दो,

देखूँगा कृतघ्न को मैं, प्रस्तुत हो आइयो,
मान रखने को आज प्राण हमें देने हैं। "[1]

पुत्र सबलसिंह प्राणों का मोह त्यागकर, मुट्ठीभर वीरों की टुकड़ी लेकर, झंझा के समान जोधपुर के सैनिकों को छिन्न-भिन्न करके अन्त में लड़ते-लड़ते वीरगति पाते हैं :-

" प्राण-मोह छोड़ उन मुट्ठी भर वीरों की-
टुकड़ी ने झंझा के समान जोधपुरके
घोर दल-बादल को छिन्न-भिन्न करके
और भली भाँति से उड़ाके धूलि उसकी
रण में सबलसिंह-युक्त गति वीरों की-
पाई और मानोस्वर्ग लेकर ही शान्ति ली। "[2]

परन्तु सबलसिंह के बारह वर्षीय पुत्र सवाईसिंह के शरीर में भी वही शोणित क्रमागत है जो उनके दादा एवं पिता के शरीर में था। सवाईसिंह पिता की मृत्यु से मर्माहत हो उठते हैं। उनके हृदय में पिता के शत्रु के प्रति प्रतिशोध की भावना उमड़ पड़ी। सारी सेना पहले ही हत हो चुकी है। वे पिता के दुश्मन को अपना जानी दुश्मन समझते है। वह उसे पशु-तुल्य मानकर कृतघ्न, नीच मूढ़ आदि की संज्ञा से विभूषित करते हैं। माता के यह कहने पर कि बेटा तुझे राजा ने बुलाया है, बालक की स्पष्ट उक्ति है :-

" जननी, मैं जाऊँगा।
किन्तु इससे नहीं, कि यदि मैं न जाऊँगा
तो ... भी मैं, बचूँगा नहीं, किन्तु इससे कि मैं

1- मैथिलीशरणगुप्त - विकटभट ; षष्ठावृत्ति ,2016 वि0 ; पृष्ठ - 6,7
2- वही, पृष्ठ - 7

देखूँगा कृतघ्न और क्रूर उस राणा के
सींग पूँछ है या नहीं, क्योंकि पशुओं से भी
नीच तथा महा मूढ़ मानता हूँ मैं उसे। "[1]

माता अपने पुत्र को मृत्यु-पथ पर जाने से जीते जी रोकती है। किन्तु जहाँ अपमान का प्रश्न होता है वहाँ वह अपने हृदय को कड़ा करके पुत्र को उसके पिता का बदला चुकाने को प्रेरित करती है। उसकी दृष्टि में आनबान बिना जीना मृत्यु सदृश है :-

" वत्स जाने में मुझे क्षेम नहीं दीखता।
ससुर गये हैं और स्वामी गये साथ ही,
मेरे लाल, तू भी चला, कैसे धरूँ धैर्य मैं?
रोने तक का भी अवकाश मुझे है नहीं ;
तो भी आनबान बिना मरना है जीना भी।
तुझको भी प्राणहीन देख सकती हूँ मैं,
किन्तु मानहीन देखा जायगा न मुझसे।
कहना वही जो कहा तेरे पितामह ने
भूल मत जाना जिस बात पर वे मरे।
अच्छा, कह तेरी कटारी की पर्तली में भी-
जोधपुर है या नहीं? "[2]

वीरप्रसू के इस प्रकार के प्रश्नों को सुनकर पुत्र माता को धैर्य एवं सांत्वना देता हुआ कहता है :-

" इसका जवाब उसी घातक को दूँगा मैं ;
तू क्यों पूछती है प्रसू, क्या इस शरीर में

1- मैथिलीशरणगुप्त - विकटभट ; षष्ठावृत्ति, 2016 वि0 ; पृष्ठ - 8
2- वही, पृष्ठ - 8

शोणित क्रमागत नहीं है उन्हीं दादा का;
किन्तु एक प्रार्थना मैं करता हूं तुझसे,
अन्ततः माँ, मेरा वह उत्तर सुने बिना
छोड़ना न मरकर शरीर यह अपना।
अपने अभागे इस पुत्र के विषय में
हृदय लिए ही चली जाना तू न तातके
पीछे, जिसमें कि उन्हें दे न सके तोष तू।"[1]

बेटे को मृत्यु-मुख में भेजते हुए क्षत्राणी माता का हृदय टूट कर बिखर गया, कण्ठ अवरुद्ध हो गया, पुत्र के अभाव की चिन्ता में उसका क्रन्दन अतीव करुण हो उठा मानों उस क्रन्दन से व्योम की छाती फटी जा रही हो :-

"जा बेटा कदाचित सदा के लिए" हाय रे।
करुणा से कण्ठ भर आया ठकुरानी का।
जाकर औरी एक कोठरी में वेग से,
पृथ्वी पर लोट वह रोई दाढ़ मारके,
व्योम की भी छाती पर होने लगी लीक-सी!"[2]

पिता के सुकृत्य पर पुत्र को बड़ा गर्व होता है। पिता की प्रशंसा से उसका हृदय फूला नहीं समाता। राजा विजयसिंह के यह पूछने पर कि क्या तुम्हारे पितावाली वह कटारी तुम्हारे पास है जिसकी पत्तली में जोधपुर था; बालक उत्तर देता है :-

"तो सुनिये,
दादा ने कटारी वह मेरे पिता के लिए
छोड़ी, और मेरे पिता सौंप गये मुझको

1- मैथिलीशरणगुप्त - विकटभट ; षष्ठावृत्ति, 2016 वि० ; पृष्ठ - 8,9
2- वही, पृष्ठ - 9

पर्तली के साथ वह मेरे इस पार्श्व में
अब भी है पृथ्वीनाथ, एक जोधपुर क्या!
कितने ही दुर्ग पड़े रहते हैं सर्वदा
क्षात्र-कीर्ति-कोषवाली पर्तली में उसकी।
*   *   *
होता न जोधपुर पर्तली में उसकी
कहिये तो कैसे वह प्राप्त होता आपको!"[1]

गुप्तजी ने " गुरु तेग बहादुर " नामक खण्डकाव्य में गुरु गोविन्द सिंह के पिता गुरु तेग बहादुर के पवित्र संकल्पों तथा उनके कारुणिक अवसान का बड़ा ही मार्मिक चित्र अंकित किया है। सिक्ख जाति की मंगल कामना से प्रेरित होकर और शान्ति की रक्षा के लिए गुरु साहब जब दिल्ली जाने के निश्चय का उद्घोष करते हैं तब उनका बेटा गोविन्द सिंह विचलित हो उठता है। पुत्र को विचलित होते देख गुरु साहब उसे सांत्वना देते हैं और यह बताते हैं कि उनके त्याग से उनका सोया समाज जाग उठेगा और अपने स्वत्व की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो जाएगा :-

" पिता! पिता! " सन्नाटा छाया,
        गदगद हुए पुत्र गोविन्द।
कहा पिता ने- वत्स! नहीं है
        कातर होने का दिन आज ;
व्यर्थ न होगी यह मेरी बलि,
        जाग उठेगा सुप्त समाज।[2]

1- मैथिलीशरणगुप्त - विकटभट ; षष्ठा आवृत्ति, 2016 वि0 ; पृष्ठ - 15,16
2- मैथिलीशरणगुप्त - गुरुतेगबहादुर ; प्रथम सं0, 2026 वि0 ; पृष्ठ - 13

गुरु साहब के दिल्ली पहुँचने पर औरंगज़ेब ने उनके साथ बड़ी प्रवंचना की। सम्मान के साथ बुला कर इतना नृशंस व्यवहार उसी के लिए संभव था। उसने गुरु साहब की हत्या करवा डाली और सिक्खों के माँगने पर संस्कार के लिए उनका शव देना अस्वीकार कर दिया। अन्त्यज कुल के एक वृद्ध ने पुत्र-सहित दिल्ली पहुँच कर गुरु की लाश का उद्धार किया और अपनी कीर्त्ति की उज्वल ध्वजा फहराई। मध्य रात्रि में किले की ढही दीवार को लाँघकर वह पुत्र-सहित वहाँ पहुँचा जहाँ गुरु साहब की लाश पड़ी थी। पहरी सोये थे। वृद्ध ने अपने पुत्र से कहा कि वह गुरु साहब की लाश कंधे पर उठा कर ले जाय और उसे काट कर वहीं उसी प्रकार चादर से ढंक कर रख दे, जिससे किसी को गुरु साहब की लाश के गायब होने की शंका न हो। वहीं कुछ क्षण तक तो पिता-पुत्र में यह विवाद होता रहा कि कौन मरे और कौन नहीं। दोनों अपनी ही बलि देने के लिए अड़े हुए थे। अन्त में पिता ने बाजी मार ली। उसने स्वयं अपनी गर्दन काट ली। पुत्र ने यथा-विहित विधि से कार्य किया और अद्भुत शौर्य और त्याग का परिचय दिया :-

"पागल! मैं मरने को ही हूँ
पर तू है कुछ करने योग्य,
इससे यह मेरा विचार ही
है तेरे आचरने योग्य।
तू भी मुझ-सा मरना पावे
अपना ऐसा बेटा छोड़ ;
जाग न जाय जवन, जल्दी कर,
तुच्छ मोह तिनके-सा तोड़ "।

1- मैथिलीशरणगुप्त - गुरुतेग बहादुर ; प्र० संस्करण, 2025 वि० ; पृष्ठ -31

दाम्पत्य के उपरान्त वात्सल्य का स्थान है। दाम्पत्य गृहस्थ जीवन का प्राण है- वात्सल्य उसकी उद्भूति है। वहीं आत्माओं का एकीकरण है और यहीं आत्मा का विभाजन अथवा प्रतिफलन " आत्मा वै जायते पुत्र: "। साकेत में एक पिता हैं और तीन माताएँ हैं, जो माता होने के साथ-साथ विमाता और सास भी हैं। यह सम्मिलित परिवार आदर्श हिन्दू परिवार है, जिसमें स्वार्थ, ईर्ष्या, स्पर्धा का सर्वथा त्याग मिलता है। वहीं ऐक्य और पारस्परिकता की रक्षा के लिए सामंजस्य के लिए प्रयत्न नहीं करना पड़ता। साकेत में दशरथ वृद्ध अतएव भीरु पिता हैं। अनेक साधना और विषम तपस्या से उनको पुत्र-प्राप्ति हुई है। अत: उन पर अत्यधिक मोह होना स्वाभाविक है।[1]

माता को यह विश्वास रहता है कि वह किसी भी अवस्था में क्यों न हो, पुत्र उसकी रक्षा अवश्य करेगा। कैकेयी को भी अपने भरत पर पूर्ण आस्था है तभी तो सपत्नी-पुत्र लक्ष्मण के क्रोध करने पर वह कहती है कि यदि आज यहीं भरत उपस्थित होता तो मैं भी तुम्हें बता देती :-

" भरत होता यहाँ तो मैं बताती।"[2]

भरत के प्रति कैकेयी का वात्सल्य अत्यधिक तीव्र है। " इसी पुत्र-स्नेह के कारण उसे " पति के कटुवाक्य तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न के अपशब्द सभी कुछ सह्य हो जाते हैं, परन्तु दुर्भाग्य और आगे चलता है। उसको भरत का तिरस्कार भी सहना पड़ता है। यहीं आकर उसका हृदय टूट जाता है। उसका बल नष्ट हो जाता है। उसका मातृ-गर्व पानी-पानी हो जाता है।"[3] कैकेयी उन्मादिनी-सी चिल्ला उठती है :-

सब करें मेरा अपवाद ;

1- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; पृ० सं०, सन् 1940 ई० ; पृष्ठ- 43
2- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 76
3- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; पृ० सं०, सन् 1940 ई० ; पृष्ठ -51

किन्तु उठ, ओ भरत, मेरा प्यार,
चाहता है एक तेरा प्यार।
राज्य कर, उठ वत्स, मेरे बाल,
मैं नरक भोगूँ भले चिरकाल।"[1]

" कैकेयी के उक्त वचन में अपने पुत्र को सभी प्रकार से सुख समृद्धि एवं शक्ति से सम्पन्न बनाने की कैसी उत्कट अभिलाषा भरी हुई है और इसके हेतु उसे अपने मान अपमान की भी कुछ चिन्ता नहीं। उसने भरत के विचारों को बिना जाने ही यह सारा काण्ड ताण्डव कर डाला और वात्सल्य में अंधी होकर यह मार्ग अपना लिया। माता के लिए यह उचित भी है कि अपने पुत्र को सुखी बनाने के लिए तथा उसके अधिकारों पर कुठाराघात हो रहा होतो उसकी रक्षा करने के लिए वह सभी प्रकार के उपाय करे। कैकेयी ने भी यही किया है।[2] माता कैकेयी अपने पुत्र के लिए नरक का दुःख तक भोगने के लिए तैयार है। युवराज भरत से दण्ड ग्रहण करने में भी उसे सुख है। यह है कैकेयी की ममता और उसका वात्सल्य :-

"धन्य तेरा क्षुधित पुत्र-स्नेह,
खा गया जो भून कर पति देह।"[3]

" कैकेयी का वात्सल्य दीन या निस्पृह नहीं है। उसमें ममत्व और मोह है, एक वेग है, एक आग है और है प्रतिदान की स्पृहा। वह पुत्रों से प्रेम करती है। पुत्रों पर मरने के लिए तैयार है। परन्तु उसमें अधिकार की भावना है और आवेग की प्रबलता।"[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 196
2- डा० द्वारिका प्र० सक्सेना - साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन; पृष्ठ-159
3- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; प्र० सं० सन् 1940 ई० ; पृष्ठ - 51
4- वही, पृष्ठ - 46

कैकेयी को माता के रूप में चित्रित करके गुप्तजी ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह अपने पुत्र-स्नेह के कारण धर्म से मुँह मोड़ सकती है, सारा स्नेह का सम्बन्ध छोड़ सकती है। न्याय की परवा किए बिना, स्वजन एवं पुरजन के वैराग्य को अनसुना करके प्राण-पति के चिरवियोग को भी सह लेती है।

कैकेयी का मातृत्व अत्यन्त आवेग से भरा हुआ है। भरत की विमुखता अन्त में इसके मोहान्धकार को दूर कर देती है और चित्रकूट में हम उसकी ग्लानि को शत सहस्त्र धाराओं में बहते हुए पाते हैं। वहाँ भी वह मातृत्व की दुहाई देती हुई कहती है :-

" अपराधिनी मैं हूँ तात तुम्हारी मैया।"[2]

कैकेयी को सबसे बड़ा कष्ट यह है कि क्या उसके ममता भरे वात्सल्य का कोई मूल्य नहीं है? वह कहती है :-

" कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य मात्र क्या तेरा,"[3]

कैकेयी के उक्त कथन में " कितना दर्द है। रानी के जीवन की समस्त व्यथा इस एक वाक्य में मुखर हो उठी है।[4] मात्र इतना ही नहीं, वह अपनी नीचता, कुटिलता, कठोरता एवं त्रुटि के लिए नाना प्रकार की यातनाएँ सहने को तैयार हो जाती है, इसके लिए वह सभी के कटु वचनों को सह सकती है, परन्तु भरत की माता का पद किसी अवस्था में नहीं छोड़ सकती। वह भरी सभा में घोषणा करती है :-

---

1- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; पृ०संस्करण, सन् 1940 ई०; पृष्ठ-5।
2- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ -
3- वही, पृष्ठ - 249
4- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; पृ० संस्करण सन् 1940 ई०; पृष्ठ-5।

" चूके, मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके,
जो कोई जो कह सके, कहे क्यों, चूके?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
रे राम, दुहाई करूँ और क्या तुझसे?"[1]

" कैकेयी के इन शब्दों में कितनी आत्मग्लानि, कितनी आत्मव्यथा एवं कितनी मातृत्व-गर्व की भावना भरी हुई है, जिसके कारण उसके सम्पूर्ण पापों का प्रक्षालन हो जाता है।"[2]

अन्त में कैकेयी के निम्न शब्द :-

" युग-युग तक चलती रहे कठोर कहानी-
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी।"
निज जन्म-जन्म में सुने जीव यह मेरा-
" धिक्कार! उसे था महा स्वार्थ ने घेरा।"[3]

कैकेयी एक कठोर एवं कुटिल विमाता के रूप में अंकित हुई है। राम को वनवास देकर वह अपने वात्सल्य एवं दुलार पर तीव्र प्रहार करती है तथा राजा दशरथ के बार-बार समझाने पर भी टस से मस नहीं होती। यहाँ तक कि राम बड़ी विनम्रता एवं शालीनता के साथ वन जाने के लिए तैयार हो जाते हैं और पिता को भी दुःखी न होने का आग्रह करते हैं, परन्तु राम के इस सरल एवं सौम्य व्यवहार से भी वह पाषाणी तनिक भी नहीं पसीजती और जिस समय लक्ष्मण विमाता से यह पूछते हैं कि " क्या ये सब बातें ठीक हैं," तब भी वह क्रूर-हृदया जननी अत्यन्त ईर्ष्या-द्वेष में निमग्न होकर लक्ष्मण को बड़ा ही रूखा उत्तर देती है,"[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 249
2- द्वारिका प्र0 सक्सेना - साकेत में काव्य संस्कृति और दर्शन;प्र0सं0,1961, पृष्ठ-160
3- मैथिलीशरणगुप्त- साकेत; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 249
4- द्वारिका प्र0 सक्सेना-साकेत में काव्य,संस्कृति और दर्शन;प्र0सं0,1961,पृष्ठ-157

" कहा तब कैकेयी ने- " क्या कहूँ मैं!
कहूँ तो रेणुका बनकर रहूँ मैं।
खड़ी हूँ मैं, बनो तुम मातृघाती,
भरत होता यहाँ तो मैं बताती।"[1]

" विमाता के उक्त शब्दों में कितना डाहभरा हुआ है। उसके हृदय में अपने सौतेले पुत्रों के प्रति कितनी घृणा उभर पड़ी है।"[2] यहाँ गुप्तजी ने विमाता का भयानक चित्रण किया है। वह यहाँ भयानक आँधी बन जाती है एवं परिवार के समस्त सुखों को पल भर में नष्ट कर देती है।

लक्ष्मण अपनी विमाता के कटु वचनों को सुनकर उन्माद-सा हो जाता है। वह चुप रह कर अन्याय को सहन नहीं कर सकता। उसके सारे शरीर में आग सी लग जाती है। कैकेयी के यह कहने पर कि " भरत होता तो मैं बताती"; लक्ष्मण कुपित होकर उत्तर देते हुए कहते हैं, " अरे, क्या तुम इतना सब कुछ करने के पश्चात् भी अब मातृत्व प्रदर्शित करना चाहती हो! और तुम भरत का भय किसको दिखा रही हो! मैं भरत को भी मार डालूँगा और तुम्हें भी। मैं तुम्हारे अत्याचारी भाई युधाजित के भी प्राण नहीं छोड़ूँगा :-

" अरे मातृत्व तू अब भी जताती!
ठसक किसको भरत की है बताती!
भरत को मार डालूँ और तुझको,
युधाजित आततायी को न छोड़ूँ
बुलाले सब सहायक शीघ्र अपने।"[3]

x x x

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 76
2- द्वारिका प्र० सक्सेना- साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन; प्र०सं० 1961; पृष्ठ - 157.
3- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 76

लक्ष्मण कैकेयी के कोध की उपमा कीच से देते हुए कहते हैं :-

" हुए वे साधु तेरे पुत्र ऐसे
कि होता कीच से कंज जैसे
x x x
तुझे सुत-भक्षिणी साँप समझते,
निशा को मुँह छिपाते दिन समझते। "[1]

गुप्तजी ने विमाता के प्रति आदर्श प्रतिक्रिया दिखाने का प्रयास नहीं किया है। उन्होंने सामान्य लोक-जीवन की सामान्य भावना का यथार्थ चित्रण किया है। यह यथार्थता कहीं-कहीं स्तर से स्खलित हो जाने के कारण खटकने लगती है। अत: लक्ष्मण अपशब्द कहने से नहीं चूकता। विमाता और सपत्नी पुत्र की सुनकर गाली गलौज होती है। लक्ष्मण कैकेयी को नागिनी, अनार्या की जनी, हतभागिनी कहने से नहीं चूकता :-

" खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह
अनार्या की जनी, हतभागिनी यह
अभी विषदन्त इसके तोड़ दूँगा
न रोको तुम तभी मैं शान्त हूँगा। "[2]

कैकेयी का हृदय विरोधाभासों से भरा हुआ है। जिस राम को वह प्राणों से भी अधिक चाहती है, जिसे भरतसे भी अधिक प्यार देती है उसे ही वह वन को भी भेजने के लिए तत्पर हो जाती है। एक समय उसके हृदय में राम के लिए ममत्व की कमी नहीं थी। राम को वह भरतसे अधिक प्यार करती थी। तभी तो वह कहती है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 77
2- वही, पृष्ठ - 78-79

" होने पर प्रायः अर्द्ध रात्रि अन्धेरी
जीजी आकर करती पुकार थी मेरी
लो कुहकिन अपना कुहुक, राम यह जागा
निज मझली माँ का मुख न देख उठ भागा।"[1]

मन्थरा जब गृह-कलह सम्बन्धी भेद भरे वाक्य उससे कहती है तब वह क्रोधित होकर उत्तर देती है :-

" वचन क्यों कहती है वाम,
नहीं क्या मेरा बेटा राम?"[2]

पुत्र के मन में पिता के प्रति अगाध श्रद्धा है। वे उनकी वन्दना करते हैं। गुप्तजी ने अपने काव्य में पितृ-भक्ति का उत्कृष्ट निदर्शन किया है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम अनुज से कहते है :-

" चलो, पितृ-वन्दना करने चले अब।"[3]

पुत्र पिता के कष्ट को दूर करने के लिए सदैव तत्पर रहता है। पिता को चिन्तित देखकर राम बड़ी ही सावधानी से अपने हृदय की पीड़ा को सह लेते हैं एवं माँ कैकेयी से पिता के दुःख का कारण पूछते हैं :-

" कहा भी " देवी! यह क्या है, सुनूँ मैं,
कुसुम-सम तात के कण्टक चुनूँ मैं। "[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 252
2- वही, पृष्ठ - 45
3- वही, पृष्ठ - 70
4- वही, पृष्ठ - 72

पितृ-वत्सल पुत्र पिता की आज्ञा को शिरोधार्य मानते हैं। वे पिता की आज्ञा-पूर्ति के हेतु अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकते हैं। पितृ-वत्सल राम पिता को चिन्तित देखकर कहते हैं "आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए तो मैं आग में भी कूद सकता हूँ" :-

"यहूँ मैं आग में भी जो कहो तुम
तुम्ही हो तात! परमाराध्य मेरे,
हुए सब धर्म अब सुसाध्य मेरे।"[1]

पिता यदि माता की कक्षा में आकर कोई गर्हित कार्य कर बैठता है तो पुत्र अन्याय को चुपचाप सहन नहीं करता। वह इसका प्रतिकार करने के लिए पिता को भी भला बुरा कहता है। गुप्तजी ने पिता-पुत्र के सम्बन्ध को सदृक्षों के अतिरिक्त दुर्वृत्तरूप में भी चित्रित किया है। राजा दशरथ राम को कैकेयी की बात में आकर वनवास देते हैं तब लक्ष्मण कहते हैं :-

"बने इस दस्युजा के दास हैं, जो
इसीसे दे रहें वनवास हैं जो,
पिता हैं वे हमारे या-कहूँ क्या?
कहो हे आर्य! फिर भी चुप रहूँ क्या?"[2]

पुत्र पिता के ऋण से मुक्त नहीं हो सकता। इसी बात को गुप्तजी ने साकेत में राम के माध्यम से व्यक्त किया है। राम अपने लघुभ्राता लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं " हे भाई, पिता के ऋण से मुक्त होना असम्भव है, बहुत कठिन है। मेरे सम्मुख पिता की आज्ञा की तुलना में राज्य एक तिनके के सदृश है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 75

2- वही, पृष्ठ - 79

" उऋण होना कठिन है तात-ऋण से,
अधिक मुझको नहीं है राज्य तृणसे। "1

पिता तथा माता की आज्ञा का पालन करना पुत्र का धर्म है। राम, पुत्र-धर्म का भलीभाँति निर्वाह करते हैं। इसीलिए वे कैकेयी पर क्रोध भी नहीं करते हैं। वे तो पितृ आज्ञा-पालन करने के लिए राज्य को भी तृणवत समझते हैं। वन को जाने के लिए निषेध करने पर सुमित्रा से राम कहते हैं :-

" यदि न आज वन जाऊँ मैं,
किसपर हाथ उठाऊँ मैं?
पूज्य पिता या माता पर?
या कि भरत से भ्राता पर?
x x x
माँ की स्पृहा, पिता का प्रण
नष्ट करूँ? करके सक्षम
x x x
मझली माँ पर कोप करूँ?
पुत्र-धर्म का लोप करूँ ?"2

साकेत में सुमित्रा का माता-भाव उदात्त रूप में हमारे समक्ष आता है। " वे क्षत्राणी माँ हैं जो कर्त्तव्य की वेदी पर स्नेह का बलिदान करने को सदैव प्रस्तुत रहती हैं। उनका मातृत्व मोह की दुर्बलता नहीं ; कर्त्तव्य की शक्ति है। "3 सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को कर्त्तव्य पथ की ओर अग्रसर करने में तनिक

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 80
2- वही, पृष्ठ - 103,104
3- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; प्र० सं०, 1940 ई० ; पृष्ठ - 52

भी हिचकिचाती नहीं। वह उसे सहर्ष राम के साथ वन भेज देती है। वह समय आने पर लक्ष्मण को भी भैया राम के आदर्शों पर चलने के लिए प्रेरित करती है :- " जा भैया आदर्श गए तेरे जिस पथ से " पुत्र को भेज तो देती है, परन्तु हृदय तो माँ का ही है। पुत्र को आज्ञा देती हुई वह कह उठती है :-

" जिस विधि ने सविशेष दिया था मुझको जैसा
लौटाती हूँ आज उसे वैसे का वैसा।"[1]

माता चुपचाप अपने अश्रु पोंछ लेती है :-

" पोंछ लिया नयनाम्बु मानिनि ने अंचल से।"[2]

" भावों की गहनता मार्मिक है। ..... गुप्त जी ने वातावरण का सृजन करने और उसे निबाहने की अपूर्व क्षमता का परिचय स्थान-स्थान पर दिया है।"[3]

" सुमित्रा " यथार्थ क्षत्रियाणी है। पुत्र के प्रति उसकी अगाध ममता है, परन्तु उसकी ममता कर्तव्य-पथ में बाधक नहीं होती। कौशल्या माता की " राम की भीख " माँगने की बात पर क्षत्रियाणी सुमित्रा स्पष्ट रूप से कहती है :-

" वीरों की जननी हम हैं
भिक्षा मृत्यु हमें सम है।"[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 458
2- वही, पृष्ठ - 458
3- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; प्र० संस्करण-1940 ई० ; पृष्ठ - 52
4- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ -102

वन जाने के लिए उद्यत राम और लक्ष्मण को सुमित्रा आशीर्वाद देती हुई कहती है :-

" धैर्य सहित सब कुछ सहना,
दोनों सिंह-सदृश रहना।"[1]

ऐसा नहीं कि राम और लक्ष्मण को अपने से अलग होते देख कर वह दु:खी न हो :-

" थीं उस समय अनस्थिर वे "[2]

किन्तु इतना सब होते हुए भी वे आत्मभाव पर नियंत्रण कर लेती है एवं सुमित्रा को भी धैर्य धारण करने के लिए कहती है :-

" जीजी विकल न हो अब यों
आशा हमें मिलावेगी,
अवधि अवश्य मिलावेगी।"[3]

" सुमित्रा " सच्चे अर्थों में वीर माता है। राम एवं रावण के युद्ध के समय सहायता के लिए जाने को प्रस्तुत शत्रुघ्न को भी रोकना उसने अनुचित समझा। कौशल्या ममत्व के कारण शत्रुघ्न को युद्ध में जाने से रोकती है एवं ममत्व पाश में कस लेती है, परन्तु सुमित्रा कह उठती है :-

" जीजी, जीजी उसे छोड़ दो, जाने दो तुम,
सोदर की गति अमर-समर में पाने दो तुम।"[4]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 108
2- वही, पृष्ठ - 108
3- वही, पृष्ठ - 108
4- वही, पृष्ठ - 458

और शकुन से कहती है :-

" जा भैया आदर्श गये तेरे जिस पथ से,
कर अपना कर्त्तव्य पूर्ण तू इति तक अथ से।"[1]

इस प्रकार सुमित्रा ऐसी क्षत्रियाणी माता है जो अपने एक पुत्र को कर्त्तव्य पर अग्रसर करने में तनिक भी हिचकिचाती नहीं। वह चुपचाप अपने आसूँ पी लेती है। माँ का आशीर्वाद भी अमृतमय होता है। सुमित्रा राम एवं लक्ष्मण को आशीर्वाद देती हुई कहती है :-

" जियो दोनों
यश का अमृत पियो दोनों।"[2]

पुत्र-वत्सल मातृ-हृदय पुत्र के अनिष्ट की चिन्ता से काँप उठता है। मृत पिता को देखकर भरत एवं शकुन जिस समय अचेत हो गए उस समय की अवस्था द्रष्टव्य है :-

" समय कौशल्या-सुमित्रा काँप-
हाय कर, करने लगी उपचार-
व्यजन, सिंचन, परस और पुकार।
x x x
देख सुत-हठ और वंश अरिष्ट
कह न माएँ भी सकीं निज इष्ट।"[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; सं० 2025 वि० ; पृष्ठ - 458
2- वही, पृष्ठ - 101
3- वही, पृष्ठ - 208

जब सभी समस्याएँ दूर हो गयीं, समस्त विघ्नों का अंत हो गया और माताओं को पुनः उनके पुत्र मिल गए तो वे आनन्द विह्वल हो उठीं :-

" न कुछ कह सकीं, न वे देख ही सकीं सुतों को,
रोकर लिपटीं उठा उठा उन प्रणति-युतों को।
काँप रही हर्ष-भार से तीनों थर-थर,
लुटा रही थी रत्न आज वे तीनों भर-भर।"[1]

व्यक्ति के सम्बन्धों में सौतेली माँ का वर्णन दूरवर्ती सम्बन्ध के अन्तर्गत आता है। गुप्तजी ने सौतेली माँ की भावनाओं पर भी प्रकाश डाला है। कौशल्या के पुत्र राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर राम की विमाता को ईर्ष्या होने लगती है। यह कौशल्या के प्रति शंका का फल है, जिसके मूल में सौतिया डाह की भावना है :-

" भरत की माँ हो गई अधीर,
क्षोभ से जलने लगा शरीर
दाह से भरा सौतिया डाह
बहाती है बस विष प्रवाह।"[2]

पुत्री को विवाह के पश्चात् विदा करते समय मातृ-हृदय का विदीर्ण होना अत्यन्त स्वाभाविक है।" मातृ-हृदय की एक अत्यन्त करुण-स्निग्ध झलक जनकपुर में उर्मिला सीता आदि की विदा के समय मिलती है। हिन्दू गृहस्थ-जीवन में यह अवसर बड़ा सकरुण होता है। पन्द्रह सोलह वर्ष तक पाली-पोसी हुई कन्या सदा के लिए दूसरे की हो जाती है - उस पर अपने हृदय का कोई अधिकार नहीं रह जाता। कितनी विवशता है।"[3] उर्मिला सीता को विदा

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; सं0 2025 वि0 ; पृष्ठ - 494
2- वही, पृष्ठ - 53
3- डा0 नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; प्र0सं0 सन् 1940 ई0 ; पृष्ठ - 52

करते समय माताओं का उद्गार द्रष्टव्य है :-

" मत रो," कह आप रो उठीं
" तुम क्यों माँ यह धैर्य खो उठीं"
यह मैं जननी प्रपीड़िता,
पर तू है शिशु आप क्रीड़िता।
* * *
सुन, मैं यह एक दीन माँ
तुझको है प्राप्त अब तीन माँ।"[1]

पुत्री का माता से दूर चली जाना वास्तव में बड़ा कष्ट दायक होता है। उर्मिला कहती है :-

" प्रिय आप न जो उबार लें,
हम को मातृवियोग मार लें।"[2]

" कौशल्या का पुत्र स्नेह कुछ कुछ दशरथ से मिलता-जुलता है। वे भी अनिष्ट-भीरु बूढ़ा माता हैं जिनका कार्य, ऐसा मालूम पड़ता है- कुल की मंगल कामना करना ही है। इस प्रेम में वृद्ध-हृदय का मोह है, भोलापन है और एक विचित्र प्रकार की निस्पृहता है। उनका हृदय दूध के समान स्निग्ध और स्वच्छ है।"[3] इसीलिए राम के मुखसे यह जानकर भी कि उसे चौदह वर्ष का वनवास मिला है माँ को प्रत्यय भी न हुआ। इसलिए भय भी न हुआ। वे मुस्कुराकर कहने लगीं -

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 381
2- वही, पृष्ठ - 383
3- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; पृ०सं०, 1942; पृष्ठ - 44,45

" लक्ष्मण यह दादा तेरा, धैर्य देखता है मेरा "

परन्तु जब उन्होंने देखा कि लक्ष्मण वास्तव में रो रहा है तो उनका भोला हृदय चीत्कार कर उठा - " ईश्वर यह क्या होता है?

माता कौशल्या को प्रत्येक वस्तु पुत्र की तुलना में तुच्छ प्रतीत होती है। उनको राज्य की चाह नहीं है। केकेयी के भाग्य पर उन्हें ईर्ष्या नहीं है। उनका हृदय तो गद्गद होकर यही माँगता है " मुझे राम की भीख मिले ! इसके लिए वे अपनी मर्यादा तोड़ने को भी प्रस्तुत हैं - छोटी सपत्नी के चरणों पर नतमस्तक होकर भिक्षा माँगने को तैयार हैं - भिक्षा केवल इतनी मात्र भिक्षा :-

" मेरा राम न वन जावे
यहीं कहीं रहने पावे। "[1]

पुत्र वियोग को माता सहन नहीं कर सकती। कौशल्या कहती है :-

" त्याग मात्र इसका धन है,
पर मेरा माँ का मन है।
हा! मैं कैसे धैर्य धरूँ?
क्या चिन्ता से दग्ध मरूँ?
यदि मैं मर भी जाऊँगी
तो भी शान्ति न पाऊँगी। "[2]

कौशल्या महिमामयी नारी है। केवल राम ही उनके वत्स नहीं हैं वरन् लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न पर भी उनकी एकसी ममता है। ननिहाल से जब लौटकर भरत को समस्त घटनाओं का ज्ञान हो जाता है। तब वे अत्यन्त दु:खी होकर

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 100

2- वही, पृष्ठ - 109

कौशल्या के पास जाकर अपने को गृह कलह का मूल बताते हुए कहते हैं :-

"आ गया मैं गृह-कलह का मूल
दण्ड दो पर दो पदों की धूल।"[1]

भरत की ग्लानि को देखकर माता कौशल्या का हृदय चीत्कार कर उठा :-

"झूठा यह सब झूठ, तू निष्पाप
साक्षिणी तेरी यहीं है आप
भरत में अभिसन्धि का हो गन्ध
तो मुझे निज राम की सौगन्ध।"[2]

वह भरत से कहती हैं कि तुम और भरत दोनों एक ही हो, केवल नाम तुम्हारा भिन्न है :-

"वत्स रे आ जा जुड़ा यह अंक
भानुकुल के निष्कलंक मयंक
मिल गया मेरा मुझे तू राम
तू वही है भिन्न केवल नाम
x x x
भर गई आज फिर मेरी गोद
आ, मुझे दे राम का सा मोद।"[3]

माता अपने पुत्र का वियोग हँसी में भी कल्पना नहीं कर सकती। कौशल्या राम के मुख से वनवास की बात सुनकर कहती है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत : 2025 वि० : पृष्ठ - 204
2- वही, पृष्ठ - 204, 205
3- वही, पृष्ठ - 205

" रह तू,
यह हँसी हाँ भी न कह तू।"[1]

माता अपने पुत्र को समीप रखने के लिए पति से क्षमा भी माँग सकती है। कौशल्या कहती है :-

" अभी प्रार्थिनी मैं हूँगी,
प्रभु से क्षमा माँग लूँगी।"[2]

इसी प्रकार जब हनुमान से लक्ष्मण-शक्ति का समाचार पाकर शत्रुघ्न सेना लेकर लंका जाने को प्रस्तुत होते हैं तो कौशल्या का मातृ हृदय चिन्तित हो उठता है एवं वे विचलित होकर कह उठती हैं :-

" बेटा बेटा नहीं समझती हूँ यह सब मैं
बहुत सह चुकी और नहीं सह सकती अब मैं
हाय! गये सो गये, रह गये सो रह जावे
जाने दूँगी तुम्हें न, वे आवें जब आवें
x x x
देखूँ, तुझको कौन छीनने मुझ से आता!"[3]

यशोधरा नामक काव्य में सिद्धार्थ की माँ माया देवी की मृत्यु के पश्चात् महाप्रजावती का चित्रण विमाता के रूप में हुआ है। उनके चरित्र-चित्रण में गुप्तजी ने युगों से प्रचलित नारी के दोष को अपसारित करने का प्रयत्न किया है कि विमाता अपनी सौत के पुत्र के प्रति द्वेष-भाव रखती है। महाप्रजावती एक

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 97
2- वही, पृष्ठ - 98
3- वही, पृष्ठ - 458, 459

आदर्श माता हैं। उन्होंने सिद्धार्थ को अपना दूध पिलाकर पाला है। संसार - कल्याण की कामना से सिद्धार्थ का चला जाना उसे बहुत कष्ट देता है। विमाता होते हुए भी उसे सिद्धार्थ के प्रति अगाध स्नेह है। वह कहती है :-

" मैंने दूध पिलाकर पाला
सौती छोड़ गया पर मुझको वह मेरा मतवाला
कहाँ न जाने वह भटकेगा
किसी झाड़ी में जा अटकेगा
हाय! उसे काँटा खटकेगा
वह है भोला भाला
मैंने दूध पिलाकर पाला।"[1]

महाप्रजावती कहती है कि सिद्धार्थ ने गृहत्याग कर उसकी अभिलाषाओं पर पानी फेर दिया। वह अपनी स्थिति की तुलना राम की सगली माँ कैकेयी से करती हुई कहती है कि लोग समझेंगे कि सिद्धार्थ को घर में सौतेली माता का कष्ट मिलता होगा तभी उन्होंने वन-प्रस्थान किया। यह सोचकर वह भय-भीत हो जाती है कि अब उन्हें कैकेयी की भाँति लांछन का शिकार होना पड़ेगा :-

" निकले भाग्य हमारे सूने,
वत्स दे गया दुख दूने,
किया मुझे कैकेयी तूने;
हा कलंक यह काला!
मैंने दूध पिलाकर पाला।"[2]

1- मैथिलीशरणगुप्त - यशोधरा ; संस्करण ; २०२४वि० ; पृष्ठ - 37
2- वही, पृष्ठ - 38

" यशोधरा " नामक खण्ड काव्य में माता यशोधरा की वात्सल्य पूरित भावनाओं का चित्रण विविधरूपों में किया गया है। उसमें सुमाता के समस्त लक्षण विद्यमान हैं। उसका मातृरूप अत्यन्त भव्य एवं उच्च है। उसका मातृहृदय वात्सल्य पूर्ण भावनाओं से ओत-प्रोत है। वह अपने प्रिय पुत्र राहुल से कहती है कि उसे रानी कहलाने में जितना संतोष एवं सुख नहीं है उतना माता कहलाने में है। वह अपने पुत्र की सेवा करना रानीपन की अपेक्षा कई गुना श्रेयस्कर समझती है। उसका कहना है कि वह राहुल को उबटन लगाने, स्नान कराने भोजन कराने तथा वस्त्र पहनाने में ही अपना समय व्यतीत करना चाहती है :-

" बस, मैं ऐसे ही दिन पाऊँ
राहुल, निज रानीपन देकर
तेरी परिचर्या पाऊँ
तेरी जननी कहलाऊँ तो
इस परवश मन को बहलाऊँ
उबटन कर नहलाऊँ तुझको
खिला पिलाकर पट पहनाऊँ।"[1]

पुत्र को किसी की कुदृष्टि न लग जाए इस भय से माता का हृदय आशंकित है। अतः माता यशोधरा पुत्र को डिठौना भी लगाना चाहती है :-

" डीठ न लगे, डिठौना देकर
काजल लेकर तुझे लगाऊँ।"[2]

माता यशोधरा अपने पुत्र राहुल को विनम्रता, सदाचार और शिष्टता आदि का पाठ पढ़ाने में प्रयास-रत रहती है। यशोधरा राहुल को कर्तव्यपरायणता की शिक्षा देती है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - यशोधरा ; 2028 वि० ; पृष्ठ - 106
2- वही, पृष्ठ - 106

" बेटा, पुरुषों के लिए स्वावलम्बी होना ही उचित है। दूसरों का भार भगवान पर है। परन्तु मेरे लिए तो मेरे स्वामी ही भगवान हैं और तेरे लिए गुरुजन ही।"[1]

माता यशोधरा पुत्र राहुल को अच्छी बातों के प्रति प्रोत्साहित करती हुई कहती है :-

" माता पिता जन्म देते हैं, परन्तु सफल उसे आचार्य देव ही बनाते है। हमें क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए, वही हमें बताते हैं।"[2]

यशोधरा नामक खंडकाव्य में पुत्र सिद्धार्थ संसार की क्षणभंगुरता को देख मन ही मन क्षुब्ध होते हैं। अतः वे मुक्ति का मार्ग ढूंढने के लिए संसार का त्याग कर चले जा रहे हैं। पूज्य पिता और माता को क्रन्दन करते हुए देख पुत्र का मन अत्यन्त दुखी हो जाता है। वह अपने श्रद्धेय लोगों से क्षमा याचना करता हुआ कहता है :-

" हे पूज्य पिता, माता, महान,
क्या माँगू तुमसे क्षमा-दान;
क्रन्दन क्यों; गाओ भद्रगान।"[3]

पुत्र अपने श्रद्धेय पिता को अत्यन्त विनीत स्वर में निवेदन करता है कि आप से दूर रहने पर भी आप सदैव मेरे समक्ष ही विराजमान रहेंगे :-

" हे मेरे प्रतिभू, तात नन्द
पाऊँ यदि मैं आनन्द-कन्द

1- मैथिलीशरणगुप्त - यशोधरा ; 2028 वि० ; पृष्ठ - 121
2- वही, पृष्ठ - 25
3- वही, पृष्ठ - 25

"तो क्यों न उसे गाऊँ अमन्द?
तू तो है मेरे ठौर-ठाम।"[1]

'यशोधरा' काव्य में राहुल का पुत्र रूप में सजीव चित्रण हुआ है। कवि ने बाल-सुलभ चेष्टाओं और बालक की कौतुहलपूर्ण विचारधारा का वास्तविक चित्रण किया है। राहुल अपनी माता से कहता है कि जब उसने अपनी आँखों में काजल लगा लिया है तब डिठौना लगाने की क्या आवश्यकता है? संभवतः उसे ज्ञात हो गया कि खाना-पीना छूट जाने कभी-कभी काँपने या पसीना बहने और जैसे-तैसे जीवन व्यतीत करने पर डिठौना लगाया जाता है। उसे किसीकी कुदृष्टि तो नहीं लगी अतः वह क्यों डिठौना लगाए :-

"कैसी डीठ? कहाँ कहीं का टोना?
मान लिया आँखों में अंजन, माँ, ये किसलिए, डिठौना
यही डीठ लगने के लच्छन, छूटे खाना-पीना,
कभी काँपना, कभी पसीना, जैसे-तैसे जीना।"[2]

राहुल माँ से कहता है कि यदि विचार कर देखा जाए तो तुझे ही डिठौना लगाना चाहिए, क्योंकि तू अपनी सुधबुध भुला बैठी है, रात्रि भर सोती नहीं है और ठीक से खाती, पीती भी नहीं है :-

"डीठ लगी तब स्वयं तुझे ही, तू है सुधबुध हीना।
तू ही लगा डिठौना, जिसको काँटा बना बिछौना।"[3]

माँ के भाल पर लाल सिंदूर का टीका देखकर उसके मन में अत्यन्त कौतु-हल होता है कि उसे क्यों माँ काजल का टीका लगाना चाहती है। इस भेदभाव

1- मैथिलीशरणगुप्त - यशोधरा ; 2028 वि० ; पृष्ठ - 25
2- वही, पृष्ठ - 107
3- वही, पृष्ठ - 107

के कारण वह अत्यधिक चंचल हो उठता है। वह माँ से कहता है, " क्या बात है! मेरा चुम्बन तो तुझे मीठा लगता है, पर मुझे तेरा चुम्बन खारा प्रतीत होता है " :-

" लोहित-बिन्दु भाल पर तेरे, मैं काला क्यूँ हूँ माँ!
लेती है जो वर्ण आप तू, क्यों न वही मैं हूँ माँ!
एक इसी अन्तर के मारे मैं अति अस्थिर हूँ माँ।
मेरा चुम्बन तुझे मधुर क्यों! तुझे मेरा सलोना। " [1]

पुत्र राहुल के हृदय में अपनी माता के प्रति अगाध प्रेम है। माता के बिना अकेला भोजन करना उसे स्वीकार नहीं। उसे भोजन देने पर वह माँ से कहता है :-

" माँ मेरे साथ तू भी खा " [2]

माता के प्रति प्रेम होने के कारण वह स्वयं भी सुवर्ण-खचित वस्त्र नहीं पहनना चाहता :-

" क्यों माँ, यह वस्त्र क्या बुरे हैं! तू फटे पुराने पहने और मैं सुवर्ण-खचित पहनूँ? मैं नहीं पहनूँगा। मेरे ही घूमने-फिरने और खेलने के वस्त्र क्या तेरे काषाय-वस्त्रों से भी गये-बीते हैं! " [3]

गुप्तजी ने अपने विभिन्न काव्यों में जहाँ पितृ भक्त पुत्र का चित्रण किया है वहीं अनुदार, निर्मम पुत्र का भी वर्णन किया है। क्रूर पुत्र के रूप में अत्यन्त उद्धत तथा दया माया भाव से हीन है। वह वृद्ध पिता को अपने कार्यों

1- मैथिलीशरणगुप्त - यशोधरा ; पृष्ठ - 108
2- वही, 2028 वि० ; पृष्ठ - 118
3- वही, पृष्ठ - 129

में बाधक स्वरूप समझता है। राज्य के लोभ से वह अपने पिता को कारागृह में बन्दी बनाकर रखने में तनिक भी हिचकिचाता नहीं। उसका कहना है :-

" बाधक और वृद्ध हो तुम तो
बढ रहो चुपचाप
रहो भले ही फिर तुम मेरे
बहनोई या बाप। "[1]

पुत्रके रूप में कृष्ण अत्यन्त मातृ-भक्त है। माता के द्वारा खिलाए गए मक्खन के महत्व को वह भूलता नहीं। वह कृतघ्न नहीं है। वह अपनी माता की महिमा का गान किया करता है। यशोदा के प्रति कहे गए उद्धव के कथन में कृष्ण का मातृ-प्रेम व्यक्त होता है :-

" पर अपने मक्खन के बल की
भूल न आप बड़ाई
भूला नहीं स्वयं वह उसकी
गरिमा, तेरी गाई। "[2]

माँ सदैव अपने सुत की भूख-प्यास की चिन्ता करती है। उसे खिला-पिलाकर संतुष्ट रखना अपना कर्त्तव्य समझती है। यशोदा माता भी अपने पुत्र को रुचि उत्पन्न करने वाले भोजन देती थी। माता द्वारा दिए गए भोजन का मूल्य चुकाना असम्भव होता है। उद्धव के कथन से यह स्पष्ट है :-

" उसे खिलाया और पिलाया,
तूने जितना, जैसा

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2027 वि०; पृष्ठ - 116
2- वही, पृष्ठ - 162

" गिन सकना भी इसे कठिन है

भला चुकाना कैसा! "[1]

जननी जो सौकुमार्य की मंजुल प्रतिमा होती है, प्रारम्भ से लेकर अन्त तक वह अपना सर्वस्व उत्सर्ग करती रहती है। माता अपनी सन्तान को सदा बच्चा ही समझती है। कृष्ण के ब्रज से मथुरा प्रयाण करने पर माता यशोदा उसकी चिंता में रोती रहती हैं। कृष्ण के मित्र उद्धव उन्हें रोने से वारण करते हैं। उन्हें समझाते हैं कि कृष्ण अब बच्चा नहीं है, सयाना हो गया :-

" अम्ब यशोदा, रोती है तू!

गर्व क्यों नहीं करती!

× × ×

अब शिशु नहीं सयाना है वह,

पर तू यह जाने क्या!

खाया है वह तेरी मक्खन,

मिसरी ही खाने क्या? "[2]

माता अपनी सन्तान को असावधानता से रोकने के लिए भिन्न-भिन्न उपाय प्रयोग में लाती है। उद्धव के कथन से प्रकट है कि माता यशोदा श्रीकृष्ण को बाहर जाने से रोकने के लिए अंचल से बाँध देती थीं :-

" उसे बाँधना तुझे रुचेगा

क्या अब भी अंचल से,

काट रहा है वह सुजन के

भव-बन्धन निज बल से। "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2021 वि० ; पृष्ठ - 164

2- वही, पृष्ठ - 160

3- वही, पृष्ठ - 160

मृत बच्चों की स्मृति माँ को विस्मृत नहीं होती, वह उसकी स्मृति में प्रलाप सा करती है। देवकी को विश्वास नहीं होता कि उसके बच्चे अब जीवित नहीं हैं, वह उनके अभाव में प्रलाप करती है :-

" किन्तु नहीं, वे नहीं गये, थे,
अब भी यहीं बने हैं,
जाते कैसे कहीं अन्तत:
मेरे ही न बने हैं।
इस अँधियारे में दीपक-से
ये क्या दमक रहे हैं?
मुझे निरखते हुए नेत्र ये
कैसे चमक रहे हैं? "[1]

उसका वात्सल्य पुकार उठता है :-

" आओ, अब तो तुम्हें चूमलूँ
और मुझे तुम चूमो। "[2]

वह पुत्र के मंगलार्थ समस्त कष्टों को चुपचाप सहन कर लेती है। देवकी अपने पुत्र के रक्षार्थ कारागार के कठोर दण्डकी यातना, बन्धन तथा अन्धकार को चुपचाप सह लेती है :-

" यह कारा, यह अंधकार, यह
बन्धन, सभी सहूँगी। "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2021 वि० ; पृष्ठ - 92
2- वही, पृष्ठ - 93
3- वही, पृष्ठ - 94

माता पुत्रों के द्वारा ही अपना प्रतिशोध लेती है। देवकी अपने पुत्रों को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे पुत्रो, मैं अभी तक दुष्ट कंस के कारागार से मुक्त नहीं हो सकी। तुम लोग अब बड़े हो गये हो। तुम अब मेरे बन्धन को दूर करने का प्रयत्न करो। अत्याचारी दुष्ट कंस ने मुझे कारागार में विवश बना-कर रखा है अतः तुम प्रेत बनकर सर्वप्रथम उसे ही लगो तभी मेरा प्रतिशोध पूरा होगा :-

" पर अब भी बन्धन में हूँ मैं,
विवश, देख लो बेटा
और कंस उच्छृंखल अब भी
सुख शय्या पर लेटा।
जाओ मेरे पूत-प्रेत,
प्रथम उसे लग जाओ
सुख से सो न सके वह देखो
छू कर उसे जगाओ। "[1]

दस मास दस दिन जिस कष्ट को सहन कर माता अपनी सन्तान को जन्म देती है, उसके प्रति उसका वात्सल्य-भाव स्वाभाविक है। अत्याचारी राजा कंस को देवकी के बच्चों से मरण-भय था, अतः उसने देवकी के छः बच्चों को स्वर्ग पहुँचा दिया। बच्चों की मृत्यु पर माता देवकी का हृदय विदीर्ण हो जाता है। वह दुःख से कातर होकर बिलख उठती है कि उसके एक दो नहीं, बल्कि छः छः बच्चे मारे गए हैं। मृत बच्चों की स्मृति में विह्वल देवकी माता कह रही है :-

" बच्चे मेरे-मेरे बच्चे
जीऊँ मैं क्या ले-ले,

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर : 2021 वि० : पृष्ठ - 93

मेरा मन तो चिल्लाता है
एक दो नहीं है-है। "1

सन्तान की रक्षा में माँ प्राण-पण से प्रयत्नशील रहती है। उसे मृत्यु-मुख से यदि बचाने में वह असमर्थ होती है तो उसका हृदय शोकातुर हो उठता है। दुष्ट राजा क्रंस के द्वारा पुत्रों के मारे जाने पर देवकी के हृदय पर अमिट चोट पहुँची। देवकी कहती है :-

" निष्फल मेरा प्रेम हो गया
वैर फला वैरी का :
मेरा कुछ न चला, क्या चलता
हाय चला वैरी का। " 2

" मेरे बच्चे, जैसे आये,
चले गये वैसे ही
क्यों आये, क्यों गये अरे, वे
ऐसे के ऐसे ही।
x x x
हा भगवन! हो गई व्यर्थ वह
प्रसव-वेदना सारी। "3

माता देवकी को पूर्ण विश्वास है कि उसका पुत्र ही उसको कारागार के कठोर जीवन से मुक्त करेगा :-

" वही मुक्ति देगा बस हमको
इस दारुण बन्धन से। "4

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर : 2021 वि० : पृष्ठ - 89
2- वही, पृष्ठ - 90
3- वही, पृष्ठ - 91
4- वही, पृष्ठ - 98

अपने प्रतिशोध का बदला वह पुत्र के द्वारा ही लेना चाहती है। देवकी कहती है :-

" छली कौरव से जब ली जाऊँ
उन्हें निरन्तर तब लौं,
ध्वंस न कर दे कंस-राज्य वे
मेरे जाये जब लौं। "[1]

माँ अपनी सन्तान को बाल सुलभ क्रीड़ा करते हुए देख अत्यन्त प्रसन्न होती है। देवकी अपने पुत्र के कार्य जैसे दूध दुहना, मुरली बजाना आदि देखने को अत्यन्त उत्सुक है। उसे पुत्र के शंखनाद सुनने में उस चरम आनन्द की प्राप्ति नहीं होती जो उसके बाल-सुलभ क्रियाओं को देखकर होती है। वह गद्गद् होकर कहती है :-

" अरे, देख तू यहाँ रही वह,
तेरी दुखिया मैया,
बोल कहाँ तू कुंवर कन्हैया,
मेरे राजा-भैया। "[2]

माता देवकी अपने पुत्र कृष्ण को फिर से अपने निकट पाकर प्रसन्नता से झूम उठती है। उसका गला भर आता है। अत्यधिक प्रसन्नता के कारण उसके मुख से वाणी नहीं निकलती :-

" हरि जब कारागृह में पहुँचा
तब सुख से या दुख से,
क्षण भर हाथ बढ़ाकर भी वह,
कह न सकी कुछ मुख से। "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2021 वि० ; पृष्ठ - 95
2- वही, पृष्ठ - 97, 3- वही, पृष्ठ - 166

द्वापर नामक खण्डकाव्य के "यशोदा" शीर्षक अंश में यशोदा का माता रूप में सुन्दर चित्रण हुआ है। वह अपने पुत्र गोपाल की मंगल कामना करती हुई कहती है हमारा बच्चा गोपाल जीवित रहे :-

" जिये बाल-गोपाल हमारा,
वह कोई अवतारी। "[1]

माँ को अपना पुत्र स्वाधिक सुन्दर दिखाई पड़ता है। यशोदा अपने पुत्र कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करती हुई कहती है कि यद्यपि मेरे कृष्ण का रंग सांवला सलोना है, किन्तु उस सांवले सलोने मुख से मीठी-मीठी बातें निकलती हैं। उसका चेहरा अत्यन्त भोलाभाला है। उसके नेत्र हिरण के समान सुन्दर हैं:-

" मेरे श्याम-सलोने की है,
मधु से मीठी बोली।
कुटिल अलक वाले की आकृति,
है क्या भोली-भोली!
मृग-से दृग हैं, किन्तु अनी-सी,
तीक्ष्णदृष्टि अनमोली। "[2]

भारतीय समाज के आदर्श के अनुसार पुत्र के हृदय में माता के प्रति श्रद्धा, भक्ति, सेवा परायणता, त्याग तथा अनुरक्ति का भाव होना चाहिए। महाभारत की कथा पर आधारित लघु खण्डकाव्य " हिडिम्बा " में भीम का चित्रण आदर्श मातृभक्त पुत्र के रूप में हुआ है। भीम का हृदय माता कुन्ती के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति भाव से समन्वित है। अतएव वे बीहड़ वन में आगे बढ़-बढ़ कर माता के लिए सुखद पथ का निर्माण करते चलते हैं। वे संकट तथा बाधाओं की परवाह तक नहीं करते और माता को अपने कन्धे पर उठाकर उनकी यात्रा को यथासाध्य

1- मैथिलीशरणगुप्त - द्वापर ; 2021 वि० ; पृष्ठ - 18
2- वही, पृष्ठ - 22

सुलभ बनाने का प्रयत्न करते हैं :-

" भीम ने बनाया मार्ग बीहड़ में बढ़ के,
कुन्ती जा सकी उन्हींके कन्धों पर चढ़के।
माँ को लिये वे दिये सहारा भाइयों को भी,
गिनते न मार्ग में थे खड्ड-खाइयों को भी। "[1]

कौरवों द्वारा वनवास की आज्ञा पाकर पाँचो भाई माता कुन्ती सहित वन प्रस्थान करते हैं। रास्ते में खड्ड हैं, खाईयाँ हैं वहीं प्राकृतिक सौन्दर्य देखने योग्य हैं।कहीं तो मयूर नृत्य करते हुए दिखाई पड़ते हैं तो कहीं कोयल पंचम स्वर में गीत गाकर मन-रंजन कर रही है, चारों ओर फल-फूल से लदे घने वृक्ष मन के सारे दुःख हर लेते हैं। इतना सब होते हुए भी कुन्ती के पुत्र अपनी माता के मानसिक कष्ट को भूल नहीं पाते वे सोचते हैं कि वह तो कोमलाङ्गी, सुकुमारी हैं। रानी न होतीं तो भी वह घर में रहतीं। घने, बीहड़ जंगल में वह सुकुमारी नहीं रह सकतीं :-

" वे आखेट-मर्म्म जान सकते थे आपको,
भूलते परन्तु कैसे माँ के मनस्ताप को!
रानी न भी होती वह तो भी गृह-नारी थी,
वन-गमन-योग्य न थी, चिर सुकुमारी थी। "[2]

जंगल में आकर कुन्ती के पुत्र स्वयं विपत्ति में पड़े हुए हैं, पर उन्हें अपनी तनिक चिन्ता नहीं है। माता के दुःख से उनके हृदय विदीर्ण हुए जाते हैं। वे सोचते हैं उन जैसे वीर, कर्मठ पाँच-पाँच पुत्र के रहते माँ को इतना दुःख यदि सहन करना पड़े तो व्यर्थ कोई प्रसव वेदना को क्यों सहेगी?

1- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा ; द्वि० कृति, 2013 वि० ; पृष्ठ - 8
2- वही, पृष्ठ - 8,9

" हाय! हम जैसे पाँच पाँच पुत्र रहते
जननी हमारी सहे ऐसे दुःख दहते,
तो क्या सहेगी कौन यातना प्रसव की;
होगी क्यों इतिश्री नहीं भाग्यहीन भव की? "[1]

कुन्ती के पुत्र अपनी माता के दुःख से अत्यन्त दुखी हैं। उस राजपुत्री, राजरानी, राजपुत्र-जननी को धूल में मूर्छित-सी देखकर उनका मन कराह उठता है। उन्हें याद आता है कि प्रत्येक दिन उनकी माँ लोगों को तरह-तरह के भोजन खिलाती थीं।यहाँ तक कि घर की नौकरानियों को भी साथ में बैठाकर खिलाती थीं, परन्तु हाय! आज अपने प्राणप्रिय पुत्रों को भी मन का व्यंजन खिलाने में असमर्थ हैं :-

" नित्य भोग-व्यंजन जनों को जो जिमाती थी,
सेविकाओं को भी संग बैठकर खाती थी,
आज पुत्रों को भी खिला पाती नहीं मन का
भवन-निवासिनी को त्रास मिला वन का। "[2]

माँ की प्यास बुझाने के लिए पात्र के अभाव में भीम अंजलि में ही पानी भरकर ले आते हैं :-

" अम्बा-आर्य-वा जावें,
तो वे पुनर्वक्ता तुरन्त यहीं पाजावे।
रुक न सके वे वहाँ, लौटे वायुबल से,
पात्र के अभाव में दुकूल भर जल से। "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा : द्वि०वृत्ति, 2013 वि० : पृष्ठ - 9
2- वही, पृष्ठ - 10
3- वही, पृष्ठ - 12

आदर्श पुत्र-सुलभ त्याग का बड़ा ही सुन्दर चित्र भीम ने प्रस्तुत किया है। हिडिम्बा उसे तीनों लोकों का दुर्लभ सुख भोगने के लिए तथा भाई हिडिम्बा से बचाने के लिए किसी सुदूर मनोरम द्वीप में उड़ जाना चाहती है, किन्तु भीम दुर्दिन में अपनी जननी तथा अनुजों को त्याग कर जाने को तत्पर नहीं। वे अपनी माँ तथा भाइयों के साथ रहकर कष्ट को लाघव करना चाहते हैं, दुःख में उनका हाथ बटाना अपना धर्म समझते हैं :-

" भाग चलूँ, छोड़ माता-भ्राता, वे जियें-मरें,
राक्षस नहीं हैं हम, तू ही कह, क्या करें। "[1]

* * *

" इन्द्रियों के भोग की क्या बात कहूँ तुझसे,
प्राणों के लिए भी यह होगा नहीं मुझसे। "[1]

पुत्र को सुकृत्य करते देखकर माता का मन आनन्द से गद्गद हो उठता है। भीमादि के वन में रहते समय " हिडिम्ब राक्षस ने जब उपद्रव मचाना शुरु किया तो क्रुद्ध भीम ने हिडिम्ब को बड़ी वीरता से युद्ध में मार डाला। उस शौर्य को देखकर माता कुन्ती बहुत प्रसन्न होती है एवं शीघ्र ही उसे कस कर प्यार से पकड़ लेती है :-

" धर लिया वेग से सुजात को सुमाता ने,
गर्व से सराहा उन्हें एक-एक भ्राता ने। "[2]

बचपन वह उम्र है जब मनुष्य को स्नेह की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। इस वक्त यदि पौधे को तरी मिल जाए तो ज़िन्दगी-भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं। " अजित " नामक काव्य में माँ के देहान्त के बाद

1- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा ; द्वि० वृत्ति, 2013 वि० ; पृष्ठ -17,18
2- वही, पृष्ठ - 24

बच्चे के रूप को खुराक नहीं मिली। माँ की आकस्मिक मृत्यु से उसके कोमल हृदय को ठेस पहुँचती है, उसका कहना है :-

" छुटपन में ही मुझे सदा को छोड़ गई माँ,
पर दद्दा ने मुझे न ला दी और नई माँ। "[1]

माँ की स्मृति ताजी हो उठती है। उन्हें याद आ रही कि मृत्यु के समय माँ ने सुख दुख की बात नहीं की :-

" कुछ कुछ सुध है मुझे शुष्क-से माँ के मुख की,
कही न कोई बात उन्होंने सुख की दुख की।
मानो मेरा हाथ, पिता का पैर पकड़ कर
वे चिर निद्रित हुई खाट से नीचे पड़ कर। "[2]

माता की मृत्यु के बाद बच्चे का सारा दायित्व पिता पर आ पड़ता है। बच्चे को उचित समय खिलाने-पिलाने का काम, उसकी पढ़ाई-लिखाई की पूर्ण व्यवस्था, उसके प्रति स्नेह, वात्सल्य और ममता का भाव प्रदर्शित करना पिता का ही काम है, माता के अभाव की पूर्ति पिता ही करता है :-

" लिया बाप ने ठौर आप माँ का भी जैसे,
पाला-पोसा मुझे, पढ़ाया भी कुछ कैसे।
मैं बढ़ता ही गया एक में दो-दो पाकर,
आते हैं था एक तीसरा चतरा चाकर। "[3]

पिता की छत्रछाया में पुत्र को किसी बात की चिंता नहीं सताती। खेलना, खाना, स्वच्छन्द निर्भीक होकर घूमना ही उसका कार्य है।

1- मैथिलीशरणगुप्त - अजित ; पंचमावृत्ति, 2022 वि० ; पृष्ठ - 8
2- वही, पृष्ठ - 8
3- वही, पृष्ठ - 9

रत्नावली नामक खण्डकाव्य में पुत्री का सुन्दर चित्रण हुआ है। पुत्री के जन्म के साथ-साथ ही घर में चिन्ता होने लगती है, परन्तु माता और पिता दोनों पुत्री का पालन पोषण अत्यन्त स्नेह पूर्ण ढंग से करते हैं। रत्नावली अपने माता और पिता के स्नेहपूर्ण व्यवहारों का स्मरण करती हुई कहती है :-

" पुत्री मूर्तिमती चिन्ता सी
होती है प्रति गेह की,
पर मैं पुतली थी माता के
और पिता के स्नेह की। "1

पिता के घर से बाहर जाने पर और निश्चित अवधि तक नहीं लौटने पर परिवार के सभी व्यक्ति चिन्तित हो जाते हैं, किन्तु अधिक भाव प्रवण होने के कारण पुत्री अधिक चिन्तित हो उठती है। पिता के नहीं लौटने पर रत्नावली चिंतित हो जाती है, किन्तु उनके लौट आने पर वह प्रसन्नता से फूली नहीं समाती। उसकी दृष्टि में गाय भी इस अवसर पर प्रसन्न होकर अधिक दूध देती है :-

" पैर न धरती थी धरती पर
मैं अपने आह्लाद में
श्यामा ने भी दूध अधिक कुछ
उस दिन दिया प्रासाद में। "2

पुत्री रत्नावली अपने हाथोंसे भोजन बनाकर पिता को खिलाने में अत्यन्त आनन्द का अनुभव करती है :-

" खीर बनाकर भोजनार्थ मैं
चली बुलाने चाव से "3

1- मैथिलीशरणगुप्त - रत्नावली ; प्रथमावृत्ति, 2017 वि० ; पृष्ठ - 8
2- वही, पृष्ठ - 14
3- वही, पृष्ठ - 14

भारतीय पत्नी को अपने जीवन के सबसे महत्वपूर्ण निर्णय के प्रसंग में भी अपने पिता पर अगाध विश्वास रहता है। रत्नावली अपने मैन में विचार रही है :-

" रखते मेरे तात न उनकी उन्नति का विश्वास
तो उनसे मेरे परिणय का क्यों करते आयास? "।

अपने काव्य में गुप्तजी ने यह निदर्शित किया है कि माता-पिता और सन्तान के मध्य अन्योन्याश्रय का अगाध और मीठा सम्बन्ध रहता है। दोनों परस्पर की सन्तुष्टि, सुख और आनन्द के लिए सदैव सचेष्ट रहते हैं। वे इसके लिए सभी प्रकार का त्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं।

भाइयों के पारस्परिक सम्बन्ध

गणतन्त्र के मूल में भ्रातृत्व की भावना है। व्यष्टि के लिए जो व्यक्ति-चेतना की सीमा है वही समष्टि के प्रसंग में समष्टि चेतना की सीमा में रूपान्तरित हो जाती है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो स्वयं अपनी ऊर्जा और उद्यम से जीवन को कुछ कम प्रतिभाशाली लोगों की अपेक्षा अधिक लाभदायक बना लिया करते हैं। केवल यश की कामना से वे समाज के सामूहिक उन्नयन का प्रयास करने की दिशा में प्रवृत्त दिखाई पड़ते हैं। कम सफल लोग परिश्रम करना कम कर देते हैं और अपेक्षाकृत अधिक सफल लोग उत्तरोत्तर अधिक श्रमशीलता को अपनाते जाते हैं। फल यह होता है कि श्रमशील लोगों के जीवन में सफलता का वैभव बिखर जाता है और उन्हें अवकाश का भी अधिक समय उपलब्ध होने लगता है। ऐसे लोगों में, हृदय की उदात्तता होने पर समाज के प्रति सेवा की भावना जग पड़ती है। प्रतिक्रिया के रूप में यश और सम्मान या परोपकार की इच्छा अधिकाधिक

1- मैथिलीशरणगुप्त - रत्नावली ; 2017 वि० ; पृष्ठ - 18

बढ़ती जाती है। इसप्रकार धीरे-धीरे आर्थिक विषमता स्थापित होने लगती है और उनका प्रतिफलन अन्य पात्रों की विषमताओं में भी होने लगता है। जिन लोगों को अधिक क्षमता और अधिक सफलता मिलती है, उनके हाथों में अधिक शक्ति आ जाती है और उनके साथ अधिक आदर, का वर्त्ताव किया जाने लगता है। इसप्रकार अनचाहे रूप में नैसर्गिक भिन्नता के कारण वर्गभेद उत्पन्न होने लगता है। विकास और कार्यशीलता की प्रक्रिया में यदि अधिक क्षमशील लोगों को कृत्रिम विधियों से दबाया जाए तो समाज का विकास रुक जाता है और यदि उन्हें मुक्त छोड़ दिया जाय अथवा प्रोत्साहित किया जाए तो सामाजिक विषमता की खाई बढ़ती है। ऐसी अवस्था में भारतीय मनीषा के अनुसार व्यक्ति के नैतिक मूल्य-बोध के अभिवर्द्धन के अतिरिक्त समता-स्थापन का और कोई उपाय नहीं हो सकता। उन्नतिशील व्यक्ति के हृदय की उदार मानवतावादी चेतनाओ को जागरित, विकसित और अभिवर्द्धित करना होगा। वृत्तियों के मार्गान्तरीकरण के द्वारा तथा व्यक्ति की समाज-चेतना के जागरण के द्वारा भ्रातृत्व के भाव का विस्तार करना होगा और सद्भाव पूर्ण सामाजिक जीवनस्थापना करनी होगी। यह तभी संभव है जब लोक-मंगल-मूलक भावनाओं का अधिकाधिक प्रचार और प्रसार हो। यह धर्म-चेतना की सजगता के द्वारा सर्वाधिक सरल है इसीलिए भारतीय धार्मिक जीवन में भ्रातृत्व की भावना का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। साम्प्रतिक भारतीय धार्मिक जीवन के मेरुदण्ड के रूप में प्रतिष्ठित रामचरितमानस का मूल स्वर भ्रातृत्व-भावना के मधुरीकरण की ओर ही है। अन्य सम्बन्धों को भ्रातृत्व-भावना के सम्मुख गौणप्राय चित्रित किया गया है। ऐसी अवस्था में जिनके हाथ में शक्ति है वे समाज-सेवा-भावना से प्रेरित होकर और लोक कल्याण में अर्पित होकर व्यापक श्रद्धा और प्रीति के भाजन बनते हैं। उनके स्वैरतन्त्री अधिनायक होने की आशंका नहीं रहती। हमारे धर्माचारियों ने मानव-मन के सूक्ष्म विश्लेषणों के द्वारा यह निर्धारित किया कि जिनके हाथ में शक्ति है उनकी शक्तियों का उपयोग पूर्ण भ्रातृत्व की भावना से कराने के लिए वाह्य नियन्त्रणों पर निर्भर न होकर आन्तरिक परिष्कार एवं रुचियों के जागरण पर निर्भर करना उचित

है। यदि सत्ताधारी लोगों में विनम्रता और भ्रातृत्व की उदार भावना का विकास करना हो तो आय में समानता स्थापित करने के प्रयत्न के द्वारा नहीं किया जा सकता। " केवल अच्छी शिक्षा और धार्मिक अन्त:करण के सजग नियन्त्रण द्वारा ही सत्ता के अभिमान और विशेषाधिकारों के दुरुपयोग को रोका जा सकता है। परिवर्तन की आवश्यकता वस्तुओं की ऊपरी सतह में नहीं, अपितु मानव-प्रकृति के मूल आधारों में ही है। राज्य को सच्ची सभ्यता का साधन बनाना होगा और उसे अपने सदस्यों को सामाजिक उत्तरादायित्वकी एक बिल्कुल नई धारणा की शिक्षा देनी होगी। यदि इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए हम धार्मिक अनुशासन में विश्वास रखते हैं, तो हमें कच्चा और भावुक नहीं समझा जाना चाहिए।[1]

भ्रातृत्व की भावना के विकास का लक्ष्य यह है कि आमूल आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन शान्तिपूर्ण तथा अहिंसात्मक रीति से किया जा सके। हिंसात्मक कृतियों और बल प्रयोग क्रोध के उन्माद में करते हैं। क्रोध सर्वथा त्याज्य है। क्रोध का उदात्तीकरण उत्साह में हो जाता है और तब वर्ग-विद्वेष की आवश्यकता नहीं रह जाती। वर्ग-विद्वेष एक महान प्रेरक शक्ति के रूप में कभी सफल नहीं हो सकता। भौतिक शक्ति कोई नैतिक तर्क नहीं है। हमें यह सोचने की आवश्यकता नहीं है कि गरीबों का सद्गुणों पर एकाधिकार है; प्रशासन की क्षमता, संचालन की योग्यता और नि:स्वार्थ भक्ति उन्हीं है, जबकि धनिकों को सब कल्पनीय दोषों का, सूझबूझ के अभाव, स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार का भरपूर भाग मिला है। उन दोनों के रुख मूलत: एक जैसे होते हैं। वे दोनों ही सम्पत्ति की समस्या को सर्वोच्च समझते हैं। आज बड़ी-बड़ी आत्मिक समस्याएँ दाँव पर हैं। हमारा संसार एक अगाध गर्त्त के किनारे पर चल रहा है। तत्वत: भ्रातृत्वमय जीवन-पद्धति कोई निसर्ग का नियम नहीं है। यह ऐसी विकासात्मक प्रक्रिया भी नहीं है कि जो जहाँ कहीं भी मानव प्राणी अपने मनुष्यत्व का मूल समझने

1- राधाकृष्णन् - धर्म और समाज ; पाँचवा सं0, 1967 ई0 ; पृष्ठ - 112

लगते हैं, वहाँ अपने आप स्थापित हो जाती हो। यह तो एक बहुमूल्य स्वत्व है, जिसे प्रबुद्ध लोगों ने युगों के संघर्ष के बाद प्राप्त किया है, और जब मनुष्य इसके प्रति निरपेक्ष हो जायेगा तो यह फिर अंधकार युग में खो जा सकती है। यह एक विचार है कोई प्रणाली नहीं; और हमें इसकी बड़ी सावधानी के साथ रक्षा करनी चाहिए, विशेष रूप से ऐसे समय में, जबकि यांत्रिक सभ्यता की बढ़ती हुई गति बड़ी संख्या में अधीनस्थता को जन्म दे रही है। यदि विश्व में व्याप्त सामाजिक और आर्थिक समानता को अभिवर्द्धित करना हो तो हमें नैतिक तथा आध्यात्मिक भित्ति पर भ्रातृत्व की स्थापना करनी होगी और हमें मनुष्यों को उस श्रद्धा, त्याग और सहयोगिता की ओर ले जाना होगा जो सप्राणगतिशीलता के मूल स्त्रोत में विद्यमान है। " हमें लोगों को वास्तविकता, प्रकृति और मानवीय भ्रातृभाव की जिम्मेदारी के विषय में शिक्षित करना होगा। यह एक नया मनोविज्ञान है जिसे हमें विकसित करना है। यह कोई सिद्धान्तात्मक ज्ञान का विषय नहीं है। यह बुद्धि की शिक्षा की अपेक्षा हृदय और कल्पना की शिक्षा अधिक है। यह एक नई भावना और आचार की शिक्षा है। क्रान्तिकारी समस्या को आवश्यकता से अधिक सरल रूप में देखता है। संसार की बुराइयों को व्यक्ति के आत्म से बाहर की वस्तु माना जाता है। यदि बुराई कहीं सशरीर { मूर्तिमान } है, तो वह दूसरे लोगों में, वर्ग या जाति में, समाज या राष्ट्र में है। यंत्रजात { मशीनरी } के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में परिवर्तन नहीं किया जाना है। परन्तु हमें उस यंत्रजात का उपयोग करने की उपयुक्त मनोदशा उत्पन्न करनी होगी। हमें भ्रातृत्व का विकास एक मनःस्थिति के रूप में, जीवन-शैली के रूप करना होगा। विश्व-भ्रातृत्व का जन्म केवल तभी हो सकता है, जब हम पहले अपने अन्दर संघ-भाव उत्पन्न कर लें। यही धर्म के करने का काम है।"[1]

भ्रातृ-भावना की मनोरम व्यंजना " साकेत " में दर्शनीय है। भाई-भाई में प्रेम हो तो ऐसा हो। राम का भी अनुजों के प्रति अगाध प्रेम है। राम को

1- राधाकृष्णन - धर्म और समाज ; पाँचवा सं0, 1967 ई0 ; पृष्ठ - 115

यह बात अच्छी नहीं लग रही है कि वे राज्याभिषेक के बाद से भाइयों के साथ सम-सुख भोग नहीं पा सकेंगे। राज-व्यवस्था समता का सुयोग मिटा देगी। उन्हें अधिक अधिकार खलता है, क्योंकि आदर्श भ्रातृत्व का मुख्य आधार समानता है। राम के राज्याभिषेक की तैयारी हो रही थी तभी राम ने अपनी अर्द्धांगिनी से स्पष्ट रूप से कहा था :-

" रहेगा साधु भरत का मन्त्र,
मनस्वी लक्ष्मण का बल-तन्त्र।
तुम्हारे लघु देवर का धाम,
मात्र दायित्व हेतु है राम। "[1]

कैकेयी भरत के लिए राज्य वरदान माँगती है। राम को चौदह वर्षों का वनवास मिलता है। वनवास की बात सुनकर राम तनिक भी चंचल नहीं होते, वरन् कहते हैं कि उनमें एवं भरत में अन्तर ही क्या है? अग्रज का अनुज पर स्नेह दर्शनीय है। राम कहते हैं कि भरत अयोध्या का राजा बनकर अपने कर्त्तव्य का पालन करें तथा मैं पिता की आज्ञा का पालन करते हुए वन में जाकर धर्म का पालन और विस्तार करूँ :-

" अरे, यह बात है, तो खेद क्या है?
भरत में और मुझसे भेद क्या है?
करें प्रिय यहाँ निज-कर्म पालन,
करूँगा मैं विपिन में धर्म पालन। "[2]

मनुष्य सत्संकल्पों के लिए जीता है। राज्य, सम्पदा सुख और भोग तो प्रासंगिक विषय हैं। इनका उपयोग केवल साधन के रूप में हो सकता है। ये स्वयं

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि०, पृष्ठ - 54
2- वही, पृष्ठ - 74

जीवन के साध्य या लक्ष्य नहीं हैं। भारतीय समाज का यह आदर्श रहा है कि जीवन उनके लिए नहीं जिया जाए, वरन् इनकी सहायता से (अथवा बिना इनके सहायता के भी) यथार्थ लक्ष्यों की उपलब्धि हो सके। इसीलिए श्रेष्ठ सामाजिक आदर्श राम ने भी इन्हें गौण माना है।

जीवन के उच्चादर्शों की उपलब्धि के लिए अथवा महान संकल्पों को स्थापित करने के लिए सहयोगियों और अभिन्नप्राय सहायकों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्था में यह विचारणीय है कि अपने भाइयों से बढ़कर दूसरा कौन सहयोगी हो सकता है। प्रत्येक पुरुष का और परिवार का जीवन-क्रम किसी न किसी लक्ष्य की ओर केन्द्रित है। वह, लक्ष्य का अनुगमन ही धर्म है। एकपिता या एक परिवार के धर्म-संकल्पों को कार्यान्वित करने के लिए अभिन्न सहचर के रूपों में भाइयों से बढ़कर कौन हो सकता है? राम इस परम्परानुगत भ्रातृत्व के महत्त्व से सुपरिचित हैं। इसीलिए वे राज्यादि से कहीं अधिक महत्त्व भाई के प्रेम को देते हैं। मनुष्य यदि भाई के लिए भी त्याग न कर सके तो फिर अन्य किसके लिए त्याग कर सकेगा; और त्याग तो प्राप्त अधिकार या प्राप्त वस्तु का ही होता है। विवश होकर त्याग करने का महत्त्व नहीं है। राम सबल, समर्थ और स्वतः अधिकारी होकर भी धर्म की प्रेरणा से भाई के लिए त्याग करते हैं।

दशरथ के मन्त्री से राम कहते हैं कि स्पृहा भाई से क्यों की जाय? धर्म से तो स्पृहा का स्थान ऊँचा नहीं हुआ करता। राम का अपने भाई भरत पर इतना विश्वास है कि वे कहते हैं कि ऐसा क्या है जो मैं कर लेता और भरत नहीं कर सकेंगे। प्रजा-जन का मोह उन्हें अकारण प्रतीत होता है। वे भरत की निन्दा को अपनी निन्दा ही मानते हैं :-

" प्रभु बोले - " यह बात नहीं,
तात! तुम्हें क्या ज्ञात नहीं?
स्पृहा बड़ी या धर्म बड़ा?

किसमे है शुभ कर्म बड़ा?
x x x
उनके निन्दा वाक्य मुझे
होंगे विष के वाण बुझे।
उनकी निन्दा मेरी ही है,
पूजा प्रीति की प्रेरी है। "[1]

व्याकुल प्रजा-जन को सान्त्वना देते समय राम कहते हैं कि - " भरत सर्वथा राज्य के योग्य हैं। उनमें स्वार्थ का लेश भी नहीं है। वे जड़-भरत की भाँति निष्काम हैं :-

" किन्तु भरत के भाव मुझे सब ज्ञात हैं,
हममे वे जड़ भरत-तुल्य विख्यात हैं।
भूलोगे तुम मुझे उन्हें पाकर, सुनो,
मुझे चुना तो जिसे कहूँ अब मैं, चुनो।"[2]

वे परोपकार और कर्त्तव्यपालन की प्रतिमूर्त्ति हैं। उन्हें पाकर आप सब मुझे भी भूल जावेंगे। इतना ही नहीं, राम यह भी कहते हैं कि यदि भरत ने प्रजा जन का त्याग नहीं किया तो मैं उन्हें धर्म विरोधी मानूँ और उन्हें अपना भाई नहीं समझूँगा :-

" भरत तुम्हारे योग्य न हों त्राता कहीं,
तो समझेगा राम उन्हें भ्राता नहीं। "[3]

प्रजाजन के आश्वस्त होकर लौट जाने पर राम सुमन्त्र के साथ आगे बढ़ते हैं और वन-यात्रा में प्रथम रात्रि का वास तमसा नदी के तीर पर करते है।

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 112
2- वही, पृष्ठ - 130-131
3- वही, पृष्ठ - 131

यहाँ आरम्भ में उन्हें परिजनों का शोच-संकोच व्यस्त कर देता है, किन्तु दूसरे ही क्षण भरत की योग्यता और सदाशयता का उन्हें आश्वासन हो जाता है :-

" स्वजन-शोच-संकोच तनिक बाधक हुआ,
किन्तु भरत विश्वास शयन-साधक हुआ। "1

राम कहते हैं कि यह संसार एक महातीर्थ है। इसमें हम परस्पर मिलन सुख का अनुभव करते हुए इस संसार को एक परिवार के रूप में परिणत कर दे सकते हैं; आवश्यकता केवल इस बात कि है कि हमें परस्पर अनुराग हो और हम एक दूसरे के लिए आनन्द पूर्वक त्याग कर सकें। ऐसा होते हुए ही पग-पग पर महापुण्यमय तीर्थराज प्रयाग बन जाएगा और यह वसुधा स्वर्ग से भी अधिक उत्कृष्ट हो जाएगी :-

" सुनो मिलन ही महातीर्थ संसार में,
पृथ्वी परिणत यहीं एक परिवार में।
एक तीसरे हुए मिले जब दो जहाँ,
गंगा-यमुना बनी त्रिवेणी ज्यों यहाँ
त्याग और अनुराग चाहिए बस, यही। "2

चित्रकूट में राम ने देखा कि भरत सामने आकर गले से नहीं लगते, वरन् दूर से ही भूमिष्ठ हो कर प्रणाम करते हैं। राम अपने भाई का मर्म समझ जाते हैं और उन्हें गले से लगाना चाहते हैं :-

" रोकर रज में लोटो न भरत, ओ भाई,
यह छाती ठंडी करो सुमुख सुखदायी। "3

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 136-137
2- वही, पृष्ठ - 149
3- वही, पृष्ठ - 240

राम भरत के भावमय तर्कों से प्रायः निरुत्तर हो जाते हैं। जब उन्हें भरत को साथ न ले जाने के लिए उपालम्भ सुनना पड़ता है तब वे इतना ही कहते हैं कि मैं स्वयं कर्त्तव्य के पालन में लगा हूँ। मेरी विवशता है अन्यथा न समझो, क्योंकि मैं सदैव भरत-भाव का भूखा हूँ :-

" चिरकाल राम है भरत-भाव का भूखा,
पर उसको तो कर्त्तव्य मिला है रूखा। "[1]

राम को भरत की योग्यता, नीतिमत्ता, सदाशयता, भ्रातृ-स्नेह और धर्म धुरन्धरता पर इतना विश्वास है कि वन से लौट चलने के आग्रह पर वे निर्णय का भार भरत पर ही छोड़ देते हैं। जब भरत उनके सम्मुख लौट कर राज्य सँभालने और स्वयं वनगमन करने की इच्छा का प्रस्ताव रखते हैं तब राम उन्हें अभिन्न मान कर इस प्रस्ताव की समीचीनता प्रमाणित कर देते हैं।

भाव-विभोर भरत के सम्मुख राम निरुत्तर हो जाते हैं और भाई को अंक में भर लेते हैं। उनके अन्तःकरण का उद्गार फूट पड़ता है :-

" सुनकर उत्तर दिया राम ने
और अङ्क में उन्हें भरा,
तुम अनन्य नागर हो मेरे
मैं वन में ही आज हरा। "[2]

अनुज लक्ष्मण, अपने अग्रज के सेवक, भृत्य, सुहृत से भी बढ़ कर हैं। वनवास के अवसर पर वे अपने अग्रज के साथ मात्र निकल ही नहीं पड़ते, वरन् निद्रा का त्याग किए उनके लिए अत्यन्त चिन्तित जान पड़ते हैं :-

---

1-

2- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवाँ सं०, 2026 वि० ; पृष्ठ - 31

" तब भी लक्ष्मण घूम रहे हैं जागकर,
निद्रा का निज तुच्छ भाग तक त्यागकर। "[1]

लक्ष्मण सच्चे अर्थों में राम के सेवक थे। उनका हृदय भ्रातृ-प्रेम का तो मानों अपार समुद्र था। सदा, सर्वदा अग्रज का ध्यान उन्हें रहता है। चित्रकला में निपुण उर्मिला जब राज्याभिषेक का चित्र बनाती है तब अपने प्रिय से पूछती है " प्रिय, तुम्हारा कौन-सा पद है यहाँ?"[2] दाम्पत्य प्रेम में लीन होने पर भी लक्ष्मण का उत्तर द्रष्टव्य है :-

" एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का। "[3]

राम के अयोध्या न लौटने का लगभग निश्चय हो गया। सबके सभी तर्क शेष हो गये। धर्म के अनुरोध से राम ने वनवास का ही निश्चय प्रकट कर दिया। तभी उनकी परीक्षा के लिए जटिल वामदेव जाबालि भौतिक सुखों की महत्ता की ओर राम का ध्यान आकृष्ट करते हैं। मैथिलीशरण जी ने यह कथा वाल्मीकीय रामायण से ली है। जाबालि ने कहा - हे राम! ये सब भावुकता की बातें हैं। भ्रातृ प्रेम और कुलमर्यादा आदि कल्पनाएँ हैं। जगत में प्राप्त होने वाले सुख यथार्थ हैं। वे छोड़ने योग्य नहीं होते। इन्हीं के लिए भाई-भाई के बीच ही कितनी लड़ाइयाँ हो चुकी हैं। आप इस अवसर से लाभ उठावें और लौट चलें। राम ने दृढ़तापूर्वक इन तर्कों का प्रत्याख्यान किया और कहा कि भाइयों का प्रेम और आदर्श का अनुगमन भले ही भावुकता की बातें हों, पर मेरे लिए तो यही श्रेयस्कर हैं।

जाबालि स्वयं भौतिकतावादी नहीं थे। इतना तर्क तो उन्होंने राम के परीक्षण के लिए किया था, किन्तु उन्होंने पाया कि राम का भ्रातृ-प्रेम अटल

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 140
2- वही, पृष्ठ - 38
3- वही, पृष्ठ - 38

और अडिग है।

लंका विजय के पश्चात् राम के लौट आने पर अयोध्या में पुनः उत्साह की लहर छा जाती है। तपस्वी वेश में कृशकाय भरत को देखकर राम विह्वल हो जाते हैं। वे पुष्पक विमान से प्रायः कूदकर उतरते हैं और भरत का आलिंगन कर लेते हैं। उनकी नज़रों में भरत का त्याग अतिशय उच्चकोटि का है। उसके सम्मुख उनका अपना त्याग भी फीका लगता है :-

" वर विमान से कूद, गरुड़ से ज्यों पुरुषोत्तम,
मिले भरत से राम क्षितिज में सिन्धु-गगन सम
उठ, भाई, तुल सका न तुझसे, राम खड़ा है,
तेरा पलड़ा बड़ा, भूमि पर आज पड़ा है। "[1]

भ्रातृत्व का जैसा भाव हमें राम में मिलता है वैसा ही उज्ज्वल भाव हमें भरत के चरित्र में भी प्राप्त होता है। भरत राम को अपने जीवन का अवलम्ब मानते हैं। राम-वनगमन की सूचना पाकर भरत के मुँह से जो शब्द निकलते हैं। उससे उनके उत्कृष्ट भ्रातृ प्रेम का परिचय मिलता है :-

" वन गए? बोले भरत भययुक्त
तो सम्हालेगा हमें अब कौन?
यों अनाश्रित रह सका कब कौन? "[2]

ननिहाल से लौटकर भरत को अयोध्या का सारा वृत्तान्त ज्ञात हो जाता है। पिता को सदा के लिए खो देने का उन्हें अपार दुःख है। अपने प्राणों से भी प्रिय अग्रज के वन गमन के संवाद से वे अत्यन्त मर्माहत हैं। वे यह समझ नहीं पाते हैं कि माता कैकेयी सामान्य राज्यसुख के लिए इतना बड़ा अन्याय

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 491-92

2- वही, पृष्ठ - 194

ले कर सकती है। क्या राज्य इतनी बड़ी वस्तु है जिसके लिए न्याय, धर्म और स्नेह का भी बलिदान कर दिया जाय? क्या क्षण भंगुर भौतिक सुखों के लिए भाई, पिता तथा अन्य सभी आत्मीय जनों का त्याग कर दिया जा सकता है? भरत को यह अच्छा नहीं लगता कि आज तक जिन सुखों को वे सबके साथ भोगते आये हैं उन्हें अब वे अकेले भोगें? मनुष्य का अहंकार इतना प्रबल क्यों हो उठता है कि वह अपने को भय का उपादान बनाने के लिए व्यग्र हो उठता है:

"राज्य, क्यों माँ, राज्य, केवल राज्य?
न्याय-धर्म-स्नेह, तीनों त्याज्य।
सब कहें अब से भरत की भीति,
राजमाता कैकेयी की नीति -
स्वार्थ ही ध्रुव-धर्म हो सब ठौर।
क्यों न माँ? भाई, न बाप न और।"[1]

भरत के लिए उनकी माँ ने इतना बड़ा अनर्थ कर दिया है। अतएव वे ग्लानि से व्याकुल हैं। वे किस मुँह से राम के पास जायँ :-

"आर्य को तो मुँह दिखाने योग्य,
रख मुझे औ भाग्य के फल भोग्य।"[2]

भरत पितृ-शोक और राम-वनवास से व्यग्र हैं। वे भाई को मनाकर लौटा लाने के लिए चित्रकूट जाते हैं। उनके साथ वशिष्ठ, सुमन्त्र, राजमाताएँ तथा राजकुलों के अतिरिक्त अयोध्या के पुरवासी भी चल पड़ते हैं। राम और भरत का मिलन होता है। लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी परस्पर मिलते हैं। दृश्य हृदय-द्रावक है। पिता का शोक-संवाद राम को व्यथित कर देता है। दशरथ का श्राद्ध विधिवत सम्पन्न होता है। तब तक महाराज जनक भी आ जाते हैं। सायंकाल

---

1. मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 198
2. वही, पृष्ठ - 208

चाँदनी के मन्द आलोक में दीप मालिकाओं के सहारे राम की कुटिया के सम्मुख सभा बैठती है। वातावरण गम्भीर है। राम भरत से आगमन का कारण पूछते हैं। वे उनसे अपना अभीप्सित कहने का आग्रह करते हैं। भरत का हृदय विदीर्ण हो जाता है। वे विचित्र परिस्थिति में डाल दिए गए हैं। घटना-चक्र उन्हें कहाँ से कहाँ ले आयी है। उनकी इच्छा व अभिलाषा का इन सबसे कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी सबके केन्द्र-बिन्दु में वही प्रतीत होते हैं। इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है? भला दशरथ के प्राण-त्याग में या राम के वन-गमन में उनके अभीप्सित का क्या संबंध है? तो एक यही कि राम लौट चलें और उनके कलंक को दूर कर दें। भरत राम का प्रश्न सुनते ही कह उठते हैं कि सारी घटनाएँ तो उनकी अनीच्छा से ही घटती जा रही हैं। वे क्या कहें? क्या उनकी अन्तर्दशा का आभास सब कह डालने के लिए पर्याप्त नहीं है? द्रष्टव्य है :-

" हे भरतभद्र, अब कहो अभीप्सित अपना,
सब सजग हो गये, भंग हुआ ज्यों सपना।"
हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी?
मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब, तब भी?
पाया तुमने तरु-तले अरण्य - बसेरा,
रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा?
तनु तड़प तड़पकर तप्त ताप ने त्यागा,
क्या रहा अभीप्सित और तथापि अभागा?
हा! इसी अयश के हेतु जनन था मेरा,
निज जननी ही के हाथ हनन था मेरा।
अब कौन अभीप्सित और आर्य, वह किसका?
संसार भ्रष्ट है भ्रष्ट हुआ घर जिसका।
मुझसे मैंने ही आज स्वयं मुँह फेरा,
हे आर्य, बता दो तुम्ही अभीप्सित मेरा? "[1]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 246-247

विमाता कैकेयी यथेष्ट अनुताप कर चुकी है। वह राम से आन्तरिक अनुरोध करती है कि वे लौट चलें। उसे भरत के ऊपर राम के स्नेह का ऐसा विश्वास है कि वह कहती है कि कम से कम भरत के प्रेम के कारण तो तुम लौट चलो। कैकेयी को भरत प्रिय है और भरत को राम प्रिय हैं। अतएव राम कैकेयी के भी दुगुने प्रिय हुए। राम अपने से अधिक भरत को चाहते हैं। इसलिए भरत की रक्षा के लिए भी तो उन्हें लौट चलना चाहिए। सदा अनुशासन करने वाली माता आज राम से विनय कर रही है। राम द्रवित और संकुचित होकर क्षमा-याचना करते हैं। वे कहते हैं कि तुम्हारी आज्ञा मानकर ही मैंने वनवास ग्रहण किया है। अब क्या तुम्हारी आज्ञा मानकर राज सिंहासन ग्रहण नहीं करूँगा? किन्तु पहले प्रथम आज्ञा का परिपालनकर लूँ, तत्पश्चात् दूसरी आज्ञा का पालन अवश्य करूँगा। इससे पिता के प्रण और मेरे धर्म की भी रक्षा हो जाती है :-

" वनवास लिया है मान तुम्हारा शासन,
लूँगा न प्रजा का भार, राज-सिंहासन,
पर यह पहला आदेश प्रथम हो पूरा,
वह तात-सत्य भी रहे न अम्ब, अधूरा -।"[1]

राम कहते हैं कि भरत का यहाँ आना निष्फल नहीं हुआ; मैंने तुम्हारी आज्ञा सिर आँखों पर चढ़ा ली :-

" निष्फल न गया माँ, यहाँ भरत का आना,
सिरमाथे मैंने वचन तुम्हारा माना।।"[2]

राम के आने की अवधि ज्यों-ज्यों निकट आती है त्यों-त्यों भरत का मन कुछ अधिक उत्कंठित होता जाता है। माण्डवी कहती है कि भगवान न करें, कहीं कोई नया विघ्न उठ खड़ा हो। इस पर भरत अपने मन का दृढ़ विश्वास

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 255
2- वही, पृष्ठ - 255

प्रकट करते हैं। उन्हें अपने अग्रज के प्रेम और दिए हुए वचन पर पूर्ण विश्वास है। उन्हें राम को पाने से कौन रोक सकता है? और कौन ऐसी शक्ति है जो राम के अयोध्या लौटने में व्यवधान उपस्थित कर सके?

" रोक सकेगा कौन भरत को
अपने प्रभु को पाने से?
टोक सकेगा रामचन्द्र को
कौन अयोध्या आने से? "[1]

अयोध्या में भाई भरत और शत्रुघ्न के मन में नाना प्रकार की शंकाएँ उठती रहती हैं। न जाने आज वनवासी राम को आहार मिला हो या नहीं। जाने किन-किन कष्टों के मध्य उन्हें समय बिताना पड़ता होगा? अतएव भरत भी बीच-बीच में उपवास कर बैठते हैं :-

" सनि:श्वास तब कहा भरत ने -
तो फिर आज रहे उपवास। "[2]

लक्ष्मण मेघनाद के शक्ति बाण से अचेत पड़े थे। प्राणों की शंका थी। महावीर हनुमान योग-सिद्धि से उड़कर कैलाश की ओर संजीवनी बूटी लाने के लिए जा रहे थे। अयोध्या में भरत ने उन्हें नभ में उड़कर जाते देखा। उन्होंने विचारा कि यह कोई मायावी राक्षस है इसीलिए उन्होंने बाण चला दिया। हनुमान अचेत और आहत होकर गिर पड़े। गिरते ही उन्होंने " हा लक्ष्मण, हा सीते " कहा। अयोध्यावासियों ने उन्हें राम का अनुचर मानकर संजीवनी के सहारे जिला दिया। जीते ही हनुमान ने अपना परिचय देते हुए लंकासारा वृत्तान्त बता दिया और शीघ्र ही संजीवनी लेकर उड़ गये। कुछ दिन पूर्व कोई

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 394
2- वही, पृष्ठ - 385

योगी हिमालय से आकर वह संजीवनी भरत को दे गया था। भरत और माण्डवी को हनुमान से जो समाचार मिला वह बड़ा ही उद्वेग-जनक था। सारी अयोध्या इस समाचार से तिलमिला उठी। भरत ने सोचा कि भाई के ऊपर इतनी बड़ी विपत्ति आ पड़ी है और हमलोग यहाँ निश्चिन्त बैठे हैं। यहाँ साकेतकार ने तत्कालीन भारतीय समाज का चित्रांकन करते हुए युवकों के उद्बोधन का प्रयास किया है। गुप्तजी के भरत का कथन है - " भारत-लक्ष्मी राक्षसों के बन्धन में पड़ी सिन्धु के उस पार बिलख रही है और देशवासी निश्चेष्ट बैठे हैं। शीघ्र सेना सजाकर शत्रु मर्दन करने की आवश्यकता है। भरत स्वयं शीघ्र ही आगे बढ़कर कूद पड़ना चाहते हैं। पश्चात् देश की सुगठित सेना का आक्रमण होता रहेगा। किसी रावण की लंका को वे अवशिष्ट नहीं रहने देंगे। उन्होंने प्रण कर लिया है कि लक्ष्मण की भाँति प्राणोत्सर्ग करके भी वे भारत-लक्ष्मी का उद्धार करेंगे और अपनी भ्रातृ-भक्ति का प्रमाण देंगे :-

" भारत-लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धु पार वह बिलख रही है व्याकुल मन में।
बैठा हूँ मैं भण्ड साधुता धारण करके -
अपने मिथ्या भरत नाम को नाम न धरके।
कलुषित कैसे शुद्ध सलिल को आज करूँ मैं,
अनुज, मुझे रिपु-रक्त चाहिए, डूब मरूँ मैं।
मैं अपने जड़ीभूत जीवन की लज्जा,
उठो, इसी क्षण शूर, करो सेना की सज्जा।
पीछे आता रहे राज मण्डल दल-बल से।
पथ में जो जो पड़ें, चले वे जल से-थल से।
सजे अभी साकेत, बजे हों, जय का डंका,
रह न जाय अब कहीं किसी रावण की लंका।
माताओं से माँग बिदा मेरी भी लेना,
मैं लक्ष्मण-पथ-पथी, उर्मिला से कह देना। "[1]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 454

लंका पर आक्रमण करने के लिए अयोध्या की सेना तैयार हो गयी। सैनिक सुसज्जित अश्वों की पीठ पर बैठ चुके थे। नौ-सेना और स्थल सेना भी तैयार थी। उधर नारियों में जागरण फैल चुका था। नारी जागरण ही स्वाधीनता की कसौटी है। देश की मर्यादा का हरण हो जाय तो नारियाँ बचकर ही क्या करेंगी? अनेक बार दुर्गा, काली और चामुण्डा ने देश की रक्षा की है और असुरों का संहार किया है। सेना के प्रस्थान का समय आ गया। भरत ने शंख-ध्वनि की। अन्य सैनिकों ने भी शंखनाद किया :-

" उधर भरत ने दिया साथ ही उत्तर मानों,
एक-एक दो हुए, जिन्हें एकादश जानों।
यों ही शंख असंख्य हो गये, लगी न देरी,
घनन घनन बज उठी गरज तत्क्षण रण-भेरी।
× × ×
उठी क्षुब्ध-सी अहा! अयोध्या की नर-सत्ता,
सजग हुआ साकेत पुरी का पत्ता पत्ता। "1

उसी क्षण गुरु वशिष्ठ ने आकर बताया कि युद्ध में राम की जय निश्चित हो चुकी है। अतएव भरत को सेना लेकर भाई की सहायता के लिए जाने की-आवश्यकता नहीं है। सभी अवधि की प्रतीक्षा करें। रामचन्द्र का शुभ आगमन समय पर होगा। भरत की शंकादूर हो गयी और वे उत्कंठा पूर्वक भाई के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

अनुज के लिए उसका अग्रज सर्वस्व होता है। बड़ा भाई छोटे भाई के लिए माता, पिता, भ्राता एवं विधाता है। भाई-भाई के सम्बन्ध को गुप्तजी ने बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णित किया है। राम के वनवास जाते समय लक्ष्मण उनसे अलग रहना नहीं चाहते। वे भी उनके सुख-दुःख में समान रूप से सहयोग

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 463

देना चाहते हैं, क्योंकि लक्ष्मण को यह विश्वास है कि अग्रज से अलग रहकर उनका शरीर अपना भार सहने में असमर्थ रहेगा। लक्ष्मण का कहना है :-

" तुम्हीं माता पिता हो और भ्राता
तुम्हीं सर्वस्व मेरे हो विधाता
x x x
तुम्हीं हो एक अन्तर्बाह्य मेरे
नहीं क्या फूल-फल भी ग्राह्य मेरे। "1

अग्रज के लिए अनुज उसका हितैषी, मित्र, सुख-दुख का साथी, मन्त्री एवं सेवक सभी कुछ होता है। राम अपने लघुभ्राता लक्ष्मण को सान्त्वना देते हुए कहते हैं :-

" अनुज! मुझसे न तुम न्यारे कभी हो,
सुहृत, सहचर, सचिव, सेवक सभी हो। "2

यह माता सुमित्रा का विश्वास है कि अग्रज-अनुरागी होना बड़भागी का लक्षण है। लक्ष्मण भी ऐसा ही मानते हैं। वे राम के राज्याभिषेक की कल्पना से गद्गद् हो रहे हैं। उर्मिला के प्रति इस उक्ति से इसका स्पष्टीकरण हो जाता है :-

" कल प्रिये, निज आर्य का अभिषेक है,
सब कहीं आनन्द का अतिरेक है।। "3

लक्ष्मण अपने आपको राम का सेवक और सैनिक मात्र मानते हैं :-

" भाभी, मैं भार हूँ किस काम का?
एक सैनिक मात्र लक्ष्मण राम का। "4

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत : 2025 वि० ; पृष्ठ - 86
2- वही, पृष्ठ - 87
3- वही, पृष्ठ - 33, 4- वही, पृष्ठ - 38

श्रद्धा समन्वित अनुज लक्ष्मण से मिलते ही राम को ऐसा प्रतीत होता है मानों उन्हें त्रिलोक की सम्पदा मिल गयी हो। कितना बड़ा त्याग है लक्ष्मण का? नव-विवाहिता सुन्दरी अनुरागिणी प्रिया उर्मिला को छोड़कर चौदह वर्षों तक तपस्वी का जीवन व्यतीत करने का संकल्प। लक्ष्मण प्रेयसी उर्मिला से विदा लेकर भाई के साथ वन जाने के लिए उद्यत हो गये हैं :-

" विदा होकर प्रिया से वीर लक्ष्मण-
हुए नत राम के आगे उसी क्षण।
हृदय से राम ने उनको लगाया,
कहा - " प्रत्यक्ष यह साम्राज्य पाया। "[1]

" साकेत के राम और लक्ष्मण का भ्रातृत्व मानस के प्रसिद्ध भ्रातृत्व से भिन्न है। साकेत के लक्ष्मण राम पर उतना ही ममत्व और उतनी ही श्रद्धा रखते हैं - उनकी कष्ट सहिष्णुता भी कम नहीं। यहाँ उनका व्यक्तित्व मानस की अपेक्षा अधिक व्यक्त है। साकेत का लक्ष्मण चंचल और उद्धत छोटा भाई है जो बड़े भाई के लिए मरने-मारने तक को तैयार है, परन्तु अवसर आने पर वह राम को एकाध तीखी खुराक भी पिला देता है। अधिक निकटवर्ती होने से छोटे भाई का बड़े भाई पर विशेष अधिकार हो जाता है, जिसके सम्मुख बड़े भाई को झुकना पड़ता है। यह स्नेहानुरोध का अधिकार है।"[2] राम के अनुज लक्ष्मण भी अपने इस अधिकार को प्रयोग में लाने से नहीं चूकते :-

" आशा अन्तःपुर मध्यवासिनी कुलटा
सीधे हैं आप परन्तु जग है उलटा। "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 70

2- डा० नगेन्द्र - साकेत एक अध्ययन ; प्रथम सं० सन् 1940 ई० ; पृष्ठ - 57,58

3- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 238

अग्रज राम के लिए अनुज अपनी माता कैकेयी से झगड़ा करते हुए नहीं सकुचाते-राम के ज्येष्ठ होते हुए भी भरत राज्य कैसे हो सकते हैं :-

" भला वे कौन हैं जो राज्य लेवें
पिता भी कौन हैं जो राज्य देवें;
प्रजा के अर्थ है साम्राज्य सारा,
मुकुट है ज्येष्ठ ही पाता हमारा। "1

अग्रज के लिए वे सबसे होड़ लेने को तत्पर है :-

" इधर मैं दास लक्ष्मण हूँ तुम्हारा
उधर हो जाय चाहे लोक सारा। "2

अग्रज का कर्तव्य है कि अनुज को उचित सीख दे। लक्ष्मण जब पिता से कटु शब्द कहते हैं तो राम उन्हें समझाते है :-

" मुझे जाता समझकर आज वन को
न यों कलुषित करो प्रेमान्ध मन को।
तुम्हीं को तात यदि वनवास देते,
उन्हें तो क्या तुम्हीं यों त्रास देते॥ "3

राम के समझाने पर लक्ष्मण शान्त हो जाते हैं। भाई के मन की श्रद्धा और विनय को देखकर लक्ष्मण का आक्रोश विगलित हो जाता है। राम लक्ष्मण को समझाते हैं कि भ्रातृ-प्रेम में अन्ध होकर माता पिता के प्रति अवज्ञाशील होना उचित नहीं है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 77
2- वही, पृष्ठ - 78
3- वही, पृष्ठ - 79

" प्रभु हँस बोले - " तुमको मेरा
पक्षपात ही ठगता है। "1

लक्ष्मण में अन्याय को निर्विरोध सहन करने की शक्ति नहीं है। लक्ष्मण की उग्रता एवं अस्थिरचित्तता भरत को चित्रकूट गमन पर प्रकट होती है। भरत को ससैन्य वन में आता देखकर वे यही शंका करते हैं कि भरत किसी दुष्प्रयोजन के निमित्त यहाँ आ रहे हैं। यहाँ तक कि लक्ष्मण अपने भाई भरत को पूर्वापकारी जानकर मारने तक की योजना बना डालते हैं :-

" आये होंगे यदि भरत कुमतिवश वन में,
तो मैंने यह संकल्प किया है मन में,
उनको इस शर का लक्ष्य चुनूँगा क्षण में,
प्रतिरोध आपका भी न सुनूँगा रण में॥ "2

वाल्मीकि रामायण में भी लक्ष्मण की यह शंकाकुलता भरत के आगमन के समय अभिव्यक्त हुई है :-

" सम्प्राप्तोऽयमरिर्वीर भरतो वध्य एव हि।
भरतस्य वधे दोषं नाहं पश्यामि राघव।
पूर्वापकारिणं हत्वा न ह्यधर्मेण युज्यते
पूर्वापकारी भरतस्त्यागेऽधर्मश्च राघव।। "3

अमर्यादित होते हुए लक्ष्मण को राम समझाते हैं एवं :-

" बढ़ी तापिच्छ-शाखा सी भुजाएँ -
अनुज की ओर दाएँ और बाएँ॥ "4

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवाँ सं0, 2026 वि0 ; पृष्ठ - 23
2- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 219
3- वाल्मीकि रामायण, अयो0 का0, 96, 23-24
4- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 80

" पंचवटी " शीर्षक खण्ड काव्य में एकओर प्रकृति की मनोरम छटा का मार्मिक चित्रण है तो दूसरी ओर कुटिया के बाहर स्वच्छ शिला पर उपविष्ट लक्ष्मण के मन में उत्पन्न होने वाले विचारों का। लक्ष्मण को प्रतीत होता है कि वनवास की यह अवधि राम के सुखद साहचर्य्य और प्रकृति की स्नेहभरी गोद में जितनी आत्मीयता के साथ व्यतीत हो रही है उतनी आत्मीयता अथवा अन्तरंग क्षणों की उपलब्धि राम के राज्यारोहण के पश्चात् सम्भव नहीं होगी। सेवा का ऐसा सुयोग फिर नहीं आने का। अतएव भुवन-भर के सोने पर भी धनुर्धर लक्ष्मण निद्रा का, विश्रान्ति का और सभी भौतिक सुखों का त्यागकर भाई और भाभी की रक्षा के निमित्त प्रहरी बनकर सहर्ष सन्नद्ध है।

राम के समस्त संकटों का सामना लक्ष्मण स्वयं ही करना चाहते हैं। वे बड़े भाई पर आँच भी नहीं आने देना चाहते। निम्न पंक्तियाँ लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण हैं :-

" यदि संकट हों जितको
तुम्हें बचाकर मैं झेलूँ,
तो मेरी भी यह इच्छा है
एक बार उनसे खेलूँ।
देखूँ तो कितनी विघ्नों की
वहन-शक्ति रखता हूँ मैं,
कुछ निश्चय कर सकूँ कि कितनी
सहन शक्ति रखता हूँ मैं। "[1]

x x x

" आर्य, तुम्हारे इस किंकर को
कठिन नहीं कुछ भी सहना,

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवाँ सं0, 2028 वि0 ; पृष्ठ - 66

" असहनशील बना देता है
किन्तु तुम्हारा यह कहना।। "1

राम की निम्नलिखित स्वीकारोक्ति से लक्ष्मण के भ्रातृ-स्नेह का अनूठा परिचय मिलता है :-

" नहीं जानता मैं, सहने को
अब क्या अवशेष रहा?
कोई कह न सकेगा, जितना
तुमने मेरे लिए सहा। "2

अनुज को अग्रज के व्यक्तित्व पर पूर्ण विश्वास है। तभी तो लक्ष्मण कहते हैं " राम जहाँ भी रहते हैं वहीं रामराज्य की स्थापना हो जाती है " :-

" जो हो जहाँ आर्य रहते हैं
वहीं राज्य वे करते हैं
उनके शासन में वनचारी
सब स्वच्छन्द विहरते हैं। "3

पंचवटी का यह सुखद प्रसंग अन्तिम वर्ष में खंडित हो जाता है। सीता-हरण से राम व्याकुल और सन्तप्त हैं। लक्ष्मण की व्याकुलता उन्हें शिथिल नहीं बना पाती। मित्र-संग्रह और सैन्य-संग्रह के पश्चात् लंका पर आक्रमण होता है। घनघोर युद्ध के मध्य पराक्रमी एवं दुर्जेय वीर मेघनाद का शक्ति-बाण लक्ष्मण के वक्षस्थल को वेध डालता है। उन्हें शक्ति-बाण से मूर्छित देखकर राम का हृदय

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवाँ सं0, 2028 वि0 ; पृष्ठ - 66
2- वही, पृष्ठ - 66
3- वही, पृष्ठ - 12

अपने प्रिय अनुज के लिए हाहाकार कर उठता है :-

" सर्वकामना मुझे भेंटकर
वक्त कीर्ति कामी न बनो
रहे सदा तुम तो अनुगामी
आज अग्रगामी न बनो। "1

x x x

" आये थे तुम साथ हमें सुख ही देने को,
लाये हम भी तुम्हें न थे अपयश लेने को।
तुम न जगे तो सुनो, राम भी सो जावेगा,
सीता का उद्धार असम्भव हो जावेगा। "2

और जब लक्ष्मण की मूर्छा दूर हो जाती है तो राम की प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती :-

" भाई मेरे लिए लौट फिर भी तू आया।
जन्म-जन्म का इसी जन्म में मैंने पाया। "3

गुप्तजी ने राम और लक्ष्मण के प्रेम का मार्मिक चित्रण करके उत्कृष्ट भ्रातृ-प्रेम का आदर्श उपस्थित किया है।

कवि ने अपने खण्डकाव्य- " जयद्रथ-वध " में भ्रातृ प्रेम का मार्मिक निदर्शन किया है। अनुज भ्राता अर्जुन का अदर्शन युधिष्ठिर के मन को विचलित कर देता है। अर्जुन जब अपने पुत्र-घातक जयद्रथ के वध के लिए रणक्षेत्र जाते हैं तब अग्रज का मन अनुज की भावी आशंका को सोचकर अत्यन्त व्यग्र हो उठता है।

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 447
2- वही, पृष्ठ - 478
3- वही, पृष्ठ - 479

छोटे भाई के प्रति उनके हृदय में असीम प्रेम उमड़ रहा है। अपने हृदय की आशंका को व्यक्त करते हुए कहते हैं :-

" हे वीर! अर्जुन का न अबतक कुछ कुछ विश्रुत हुआ,
जगदीश जाने क्यों हमारा चित्त चिन्तायुत हुआ।
* * *
जब से हुए हैं ओट वे, अब तक न दीख पड़े मुझे,
हे देव! बतला तो सही, स्वीकार है अब क्या तुझे?
* * *
होंगे न जाने किस दशा में हरि तथा अर्जुन कहाँ?
हा आज पल-पल में विकलता बढ़ रही मेरी यहाँ। "1

युधिष्ठिर अनुज की सूचना लाने के लिए सात्यकि को रणक्षेत्र में भेजकर निश्चिन्त नहीं होते, वे भीम को भी अनुज की सूचना लाने के लिए भेजते हैं :-

" सात्यकि गया, पर, स्वस्थ तो भी धर्मराज हुए नहीं,
भेजा उन्होंने भीम को भी अनुज की सुध को वहीं। "2

" वक-संहार " में गुप्तजी ने भ्रातृप्रेम का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। आदर्श भ्रातृ-प्रेम वही है जहाँ कोई स्वयं कष्ट झेलकर भाई के दुःख को दूर करें। भाई अपने अग्रज तथा अनुज किसी को भी असहाय स्थिति में देखकर उसे उद्धार करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। प्रस्तुत काव्य में अपने अग्रज एवं अनुज दोनों भाइयों को " वक " के समक्ष जाने से वारण करते हुए स्वयं उस भयानक परिस्थिति में जाना चाहते हैं, बड़े भाई को " वक " के समक्ष जाते देख भीम उन्हें रोकते हैं :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - जयद्रथ-वध ; इकसठवाँ सं0, 2031 वि0 ; पृष्ठ - 70
2- वही, पृष्ठ - 72

..... " भीम ने रोका उन्हें
सप्रेम अवलोका उन्हें,
ठहरो तनिक तुम, भीम का यह काम है। "1

x x x

" लघुतम, तथा गुरु आर्य हैं,
क्या ये तुम्हारे कार्य हैं? "2

कौरवों और गन्धर्वराज चित्ररथ के बीच युद्ध हुआ। सम्मोहनास्त्र के कारण कौरव पराभूत हो गए। गन्धर्वों ने उन्हें अपने विमानों से बाँध लिया। उक्त वृत्तान्त जब भाई युधिष्ठिर को ज्ञात हुआ तब वे तत्काल कौरवों के उद्धार के लिए प्रयत्नशील हुए। उनके कथन से उनके हृदय के भ्रातृत्व-भाव का उत्कृष्ट परिचय मिलता है :-

" वीरता इसे नहीं कहते -
कि हम से पाँच-पाँच रहते,
हमारे भाई यों बहते,
और हम रहें इसे सहते।
x x x
बस अर्जुन, सत्वर जाओ
और तुम उन्हें छुड़ा लाओ
x x x
भीम, सहदेव, नकुल सबलोग
करो जाकर समुचित उद्योग। "3

1- मैथिलीशरणगुप्त - जयद्रथ-वध ; इकसठवाँ सं०, 2031 वि० ; पृष्ठ - 37
2- मैथिलीशरणगुप्त - वक-संहार ; प्र० सं०, 2021 वि० ; पृष्ठ - 37
3- मैथिलीशरणगुप्त - वन-वैभव ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 33

भाई चाहे सगे हों अथवा चचेरे, वे भाई हैं। अत: कौरवों को, जिनके कारण आज पाण्डवों को वनवास करना पड़ रहा है, विपदग्रस्त देखकर भाई युधिष्ठिर का मन विचलित हो उठता है। कौरवों के द्वारा बार-बार किए गए अत्याचारों को सहन करने पर भी युधिष्ठिर का कहना है :-

" कौरवों ने जो अत्याचार -
किये हैं हम पर बारंबार
करेंगे उनका हमीं विचार,
नहीं औरों पर इसका भार -
क्रूर कौरव अन्यायी हैं,
हमारे फिर भी भाई हैं। "1

युधिष्ठिर अग्रज हैं। अत: अपने अनुज भीम को कौरवों के प्रति उद्यत देखकर उन्हें शान्त होने को कहते हैं। उन्हें धैर्य दिलाते हैं :-

" फेरकर तब धीरज के साथ
भाइयों की पीठों पर हाथ,
विश्व-विश्रुत गुप्त-गौरव-गाथ,
बोलने लगे पाण्डु-कुल-नाथ -
शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त ;
न आतुर हो तुम यों एकान्त। "2

युधिष्ठिर की इच्छा के अनुसार सभी पाण्डवों ने दुर्योधन की रक्षा के लिए चित्ररथ पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन ने गन्धर्वों को परास्त कर कौरवों को मुक्त किया और विश्व के समक्ष भ्रातृत्व का अद्भुत उदाहरण उपस्थित किया।

1- मैथिलीशरणगुप्त - वन-वैभव ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 32

2- वही, पृष्ठ - 15

पाण्डवों की इस उदारता के सम्मुख महाराज दुर्योधन भी नतमस्तक हो गये :-

" झुका दुर्योधन का भी भाल,
वह•क में भर उसको तत्काल,
युधिष्ठिर बोले आँसू डाल -
कुल-व्रत पालो हे कुल पाल! "1

भाई बहन के सम्बन्ध

भाई एवं बहन का सम्बन्ध बड़ा मधुर होता है। साकेत में भी कवि ने भाई और बहन के सम्बन्ध का उल्लेख किया है। बहिन शान्ता का उल्लेख एक ही बार परिवार के चित्रको पूर्ण करने के लिए किया गया है। बहिन का हिन्दू संस्कृति के अनुसार हमारे परिवार में क्या स्थान है, इसका बड़ा ही सुन्दर अभिव्यंजन कवि ने किया है। राम-लक्ष्मण अभी छोटे अबोध राजकुमार हैं। वे पहली बार कौशिक के साथ राक्षसों का वध करने के लिए जा रहे हैं। उस समय बहन उसे राखी बाँधती है :-

" प्रभु ने चलते हुए कहा, " अब शान्ते भय, सोच क्या रहा,
भगिनी जय-मूर्ति-सी झुकी, यह राखी जब बाँध तू चुकी। "2

भाई एवं बहन का सम्बन्ध अत्यन्त निकट का होने के कारण समय पड़ने पर बहन अपने भाई को उचित उपदेश देकर उसे कुकृत्य से रोकती है। मदान्ध कीचक अपनी भगिनी सुदेष्णा से सैरन्ध्री के सम्बन्ध में पूछताछ करता है। सुदेष्णा उसी भाई को वासना के कुपथ से अलग हटाना चाहती है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - वन - वैभव ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 38
2- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 362

" किन्तु तुम्हें उचित नहीं जो उसको छेड़ो,
सुनकर अपना शौर्य यश:पट यों न उधेड़ो।
गुप्त पाप ही नहीं, प्रकट भय भी है इसमें ;
आत्म पराजय मात्र नहीं, क्षय भी है इसमें। "1

भाई कितना ही दुष्ट चरित्र क्यों न हो, बहन उसकी निन्दा सहन नहीं कर सकती। कृष्णा के मुख से भाई की निन्दा सुनकर रानी को धक्का लगा। वह सैरन्ध्री से कहने लगी :-

" तू जिसकी यों बार-बार कर रही बुराई,
भूल न जा, वह शक्ति-शील है मेरा भाई।
करता है वह प्यार तुझे तो यह तो तेरा-
गौरव ही है, यही अटल निश्चय है मेरा। "2

पुरुष को भाई के रूप में चित्रित करते हुए गुप्तजी ने कहा है कि भाई अपनी बहन का सदैव हित चाहता है। अत: यदि वह अनुजा को विपरीत कार्य करते देखता है तो सर्वप्रथम उसे विपरीत कार्य करने से रोकना अपना धर्म समझता है। हिडिम्बा भीम के रूप पर मुग्ध होकर मानवीरूप धारण कर उसे अपना पति बनाने के लिए आग्रह करती है। भ्राता हिडिम्ब इसको अपने कुल का कलंक मानता है :-

" होके हा! निजत्व तूने अच्छी यह लज्जा की
होके स्वयं ही न मुझे कैसी लोक लज्जा ही
बाधा न दी मैंने किसी काम में कभी तुझे,
विनिमय तूने दिया उसका यही मुझे;

1- मैथिलीशरणगुप्त - सैरन्ध्री; तेरहवां सं0, 2024 वि0 ; पृष्ठ - 13
2- वही, पृष्ठ - 23

जो है भिन्न भोग्य, तू उसी की उपभोग्य है
मैं क्या कहूँ, तू ही कह, तुझको क्या योग्य है! "1

परन्तु, भीम से युद्ध करते समय भाई हिडिम्ब को उसके वीरत्व, साहस तथा धैर्य का ज्ञान हो गया एवं भाई ने बहन के योग्य वर खोजने की प्रशंसा की :-

" बहन, सुखी हो, वर तूने योग्य ही चुना । "2

बहन-बहन का सम्बन्ध समीपस्थ एवं अनिवार्य सम्बन्ध के अन्तर्गत आता है। दु:ख के समय एक बहन दूसरी बहन को सान्त्वना देती है। लक्ष्मण के वन गमन के समय उर्मिला दु:खी होकर रोती है, सीता उसको धैर्य दिलाती है :-

" बहन! धैर्य का अवसर है, "3

एक बहन अपनी बहन को दु:खी देखकर प्रत्येक प्रकार से उसे स्वस्थ करना चाहती है। उर्मिला को मूर्छितावस्था में देखकर सीता दौड़ कर जाती है एवं :-

" बहन! बहन! कहकर सीता,
करने लगी व्यजन सीता। "

उसे अपनी बहन उर्मिला के लिए भयंकर दु:ख है। तभी तो वह कहती है :-

" आज भाग्य जो है मेरा
वह भी हुआ न हा! तेरा! "4

1- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा ; द्वितीयावृत्ति, 2013 वि0; पृष्ठ- 20
2- वही, पृष्ठ - 23
3- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 107
4- वही, पृष्ठ - 121

बहन-बहन का सम्बन्ध अत्यन्त सौहार्दपूर्ण होता है। जनकपुर में बहनों का प्रेम देखने को मिलता है। सीता उर्मिला की भ्रातृ-भावना राजा जनक की गृहस्थी को मुखरित कर देती है :-

" नचती श्रुतिकीर्ति ताण्डवी,
नदि, देती करताल माण्डवी,
भरती स्वर उर्मिला सजा,
गढ़ती गीत गभीर अजा।
x x x
दिखला कर दृश्य हाथ से,
कहतीं वे निज मग्न नाथ से-
" यह लो, अब तो बनी भली,
घर की ही यह नाट्य मण्डली। "1

शूर्पणखा वन में विचरण करती हुई लक्ष्मण को देखती है। वह लक्ष्मण के सौन्दर्य पर मुग्ध है। लक्ष्मण से वह विवाह का प्रस्ताव रखती है, किन्तु उसे बदले में नाक, कान कटवाना पड़ता है। नाक, कान कटा कर लंका जाकर शूर्पणखा अपने भाई रावण से मनुजों की शिकायत करती हुई कहते है :-

" देखो, दो तापस मनुजों ने
यह क्या गति की है मेरी
उनके साथ एक रमणी है
रति भी हो जिसकी चेरी। "2

भाई को अपना रक्षक जान आगे और भी शिकायत करती है :-

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 350-351
2- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवां सं०, 2026 वि० ; पृष्ठ - 38

" स्वयं पुनीत नहीं पावन बन
हमें पतित जन कहते हैं। "1

परम्परा से हमारे समाज में भाई सामान्यतः बहन का अपमान नहीं सह सकता। यहाँ तक कि राक्षस रावण भी दण्डकारण्य में किए गए शूर्पणखा के अपमान से क्रुद्ध हो उठा और राम से इसका प्रतिशोध लेने का निश्चय कर बैठा।

पितृव्य के सम्बन्ध

गुप्तजी ने अपने काव्यों में पुरुष को ताऊ के रूप में चित्रित किया है। "रंग में भंग " नामक काव्य में राजा वरसिंह अपने अनुज लालसिंह की पुत्री के सद्यः वैधव्य पर बहुत दुखी हैं। पुत्री को शोकग्रस्त देखकर उनका हृदय पिघल जाता है एवं आदर्श पितृव्य के समान वे अनुज-पुत्री को धैर्य धारण करने के लिए कहते हैं :-

" भाल-लिपि मिटती नहीं, हे पुत्रि! अब धीरज धरो,
अनल में जलकर हमारा घर अँधेरा मत करो।
नेत्र-तारा की तरह बूँदी रहो, अथवा यहाँ,
भजन कर भगवान का दो दान जो चाहो जहाँ।। "2

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा ; छब्बीसवाँ सं०, 2026 वि० ; पृष्ठ - 39

2- मैथिलीशरणगुप्त - रंग में भंग ; 2026 वि० ; पृ० - 19

सास-ससुर और बहू-जामाता के सम्बन्ध

चित्रकूट जाकर जब कैकेयी राम को साकेत लौटाने में समर्थ न हो सकी और निस्सहाय होकर कहने लगी- हा! तब तक मैं क्या कहूँ सुनूँगी किससे? तब उर्मिला ने बहू के रूप में अत्यन्त उचित उत्तर दिया :-

" जीती है अब भी अम्ब उर्मिला बेटी
इन चरणों की चिरकाल रहूँ मैं चेरी। "1

सास कैकेयी का हृदय उमड़ पड़ता है :-

" आ, मेरी सबसे अधिक दुःखिनी आजा
पिस, मुझसे चन्दन लता भुजी पर छाजा। "2

सास- बहू के पारस्परिक सम्बन्ध की झाँकी साकेत में यत्र, तत्र विद्यमान है।

सास को पुत्र के समान ही अपनी बधू प्यारी होती है। गुप्तजी ने सास का बधू के साथ बड़ा ही मधुर सम्बन्ध दिखाया है। सीता को राम के साथ वन प्रस्थान करते देख एवं उसे वलकल वस्त्र पहनते देख कौशल्या की आँखों में आँसू आ गए। वह किसी भाँति अपनी कोमलाङ्गिनी बहु को वलकल पहनने नहीं देना चाहती :-

" बहू! बहू! माँ चिल्लाई
आँखें दुनी भर-आईं -
हाथ-हटा ये वलकल हैं
मृदुतम तेरे करतल हैं
यदि ये छू भी जावेंगे -
तो छाले पड़ जावेंगे। "3

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 256
2- वही, पृष्ठ - 114-115, 3- वही, पृष्ठ - 115

सास को भय है कि वन में आंधी आने पर उसकी क्षीण काय बहू उड़ न जाए :-

" जब आँधी सी आवेगी
यह सहसा उड़ जावेगी। "1

सास-बहू के मधुर सम्बन्ध का व्याख्यान कवि ने अपने काव्यों में यत्र-तत्र किया है। " साकेत " में इसका अवलोकन हमें उस समय होता है जब कौशल्या मन्दिर में देवार्चन करती है एवं सीता उनके पास खड़ी है। सीता सास से पूछ-पूछ कर पूजा-सामग्री उन्हें देती है :-

" माँ क्या लाऊँ कह-कह कर
पूछ रही थी रह-रह कर।
कभी आरती धूप कभी,
सजती थीं सामान कभी।
दोनों शोभित थीं ऐसी
मैना और उमा जैसी। "2

इसी अवसर पर राम माता को प्रणाम करते हैं और माँ ने आशीर्वाद दिया। इस पर :-

" हँस सीता कुछ सकुचाई
आँखें तिरछी हो आईं,
लज्जा ने घूँघट काढ़ा "3

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 115
2- वही, पृष्ठ - 84
3- वही, पृष्ठ - 85

सास, पुत्रवधू के लिए बहू शब्द का प्रयोग करती है :-

" बहू तनिक अक्षत रोली
तिलक लगा दूँ, माँ बोली। "1

भारतीय नारी सास-सेवा अपना कर्त्तव्य मानती है। गौरांग तो भक्ति में लीन हो गए। अत: विष्णुप्रिया केवल अपनी सास के साथ जीवन व्यतीत करने लगी। वह अपने जीवन को इसी में सार्थक समझती है कि सास की सेवा-सुश्रुषा करे, इसी में उसको हार्दिक संतोष था :-

" नौट देव-पूजन प्रबन्ध कर सास का
चूल्हा सुलगाती। "2

दिन भर काम करके भी विष्णुप्रिया थकती नहीं थी। सास को सुलाकर उनका पैर दाबना विष्णुप्रिया का नित्य नैमित्य का कार्य था :-

" लेती अवकाश न थी रात तक दु:खिनी
नित्य उपवास रखती थी आप आपको,
सास को सुलाके पैर दाब कर उनके
जाके लेट जाती किन्तु कौन कहे सोती थी। "3

सास अपनी पुत्रवधू को अत्यन्त स्नेह की दृष्टि से देखती है। माँ शची पुत्रवधू विष्णुप्रिया की सेवा, सुश्रुषा पर अत्यन्त सन्तुष्ट है। वह यही प्रार्थना करती है :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 95
2- मैथिलीशरणगुप्त - विष्णुप्रिया ; 2026 वि० ; पृष्ठ - 70
3- वही , पृष्ठ - 73

" अन्य जन्म में भी मुझे तुझ-सी बहू मिले।
न मिले तनय ऐसा, कैसे कहूँ यह भी।" *1

पुत्र की अनुपस्थिति में विष्णुप्रिया ने माँ की प्रत्येक कामना की पूर्ति की :-

" माँ के मनस्काम सब पूरे किए उसने। *2

गुप्तजी ने सास एवं पुत्रवधू दोनों के पारस्परिक मधुर सम्बन्ध को बड़े सुचारु रूप से चित्रित किया है। विष्णुप्रिया वधू अपनी सास के गुणों पर मुग्ध है उसके स्नेह, सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार को देखकर वह कहती है :-

" पाऊँ तुम जैसी सास मैं भी जन्म-जन्म में। *3

एवं सास भी पुत्रवधू के नम्र, शिष्ट, विनयी आचरण से तुष्ट होकर कहती है :-

" घर-घर तुझ-सी बहू हो नर लोक में। *4

हिडिम्बा बहू के रूप में चित्रित हुई है। सास कुन्ती उससे कहती है :-

" तुझ सी बहू भी मुझे सहज मिली कहा। *5

1- मैथिलीशरणगुप्त - विष्णुप्रिया ; सप्तमावृत्ति, 2026 वि० ; पृष्ठ-130
2- वही, पृष्ठ - 131
3- वही, पृष्ठ - 131
4- वही, पृष्ठ - 131
5- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा ; द्वि०वृत्ति, 2013 वि० ; पृष्ठ - 44

सास बहू को सभी कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए आशीर्वाद देती है :-

" पूर्ण काम हो तू
यों उन्होंने उससे कहा। "1

दशरथ को एक कर्त्तव्यपरायण एवं स्नेही ससुर के रूप में हम पाते हैं। जब सीता अपने प्राणप्रिय के संग चौदह वर्ष के लिए वनवास चली जाती है एवं राजा दशरथ के कहने पर सुमन्त्र राम एवं सीता को पुनः लौटा लाने के लिए जा कर भी उन्हें लौटा लाने में असमर्थ होते हैं तब दशरथ की दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है वे सुमन्त्र से पूछते हैं :-

" कुछ नहीं कहा क्या सीता ने,
वैदेही बधू विनीता ने! "2

सुमन्त्र के यह कहने पर कि सीता साकेत धाम की याद करके अन्यमनस्क हो गईं एवं साकेत स्मृति से उनके नेत्रों में आँसू छलछला रहे थे। इन बातों को सुनकर वात्सल्य भाव से पूरित दशरथ का हृदय करुण चीत्कार कर उठा। वे सोचते हैं कि कोमल तन वाली वधू सीता वन में किस प्रकार रह सकेंगी!

" हाय! सीते
हम हैं कठोर अब भी जीते।
सहकर भी घोर कष्ट तन पर
गृह योग बने हैं वनस्पृही
वन-योग्य हाय! हम बने गृही। "3

1- मैथिलीशरणगुप्त - हिडिम्बा ; द्वि0वृत्ति, 2013 वि0 ; पृष्ठ - 44
2- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 176
3- वही, पृष्ठ - 177

वधू के अभाव में ससुर का शोक द्रष्टव्य है :-

" वह वधू जानकी जहाँ गई,
सीता भी माता लोड़ गई,
बस वृद्ध ससुर को छोड़ गई,
उर्मिला बहू की बड़ी बहन,
कैसे करूँ मैं शोक-सहन'. *1

परिवार में सास-बहू का सम्बन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गुप्तजी ने अपने काव्य में इस सम्बन्ध को बड़ी सतर्कता के साथ दिखाया है। राम के राज्याभिषेक के समय कौशल्या माता बहू सीता को वस्त्र, अलंकारादि देती है साथ ही उसे कुछ यथोचित उपदेश भी देती है :-

" इसीक्षण कौसल्या अन्यत्र
सजाकर पट-भूषण एकत्र
वधू को युवराज्ञी के योग्य
दे रही थीं उपदेश मनोज्ञ। *2

कविवर गुप्तजी ने अपने काव्यों में जामाता के रूप में पुरुष का चित्रण किया है। " रंग में भंग " नामक ऐतिहासिक काव्य में विवाह स्थल पर ही कन्या पक्ष तथा वर पक्ष में युद्ध आरम्भ होने पर जामाता राना भी युद्ध के लिए उद्यत हो गये। राजा वरसिंह राना को जामाता जानकर युद्ध न करने के लिए प्रेरित करने लगे :-

" जान जमाता बहुत वरसिंह ने रोका उन्हें,
और शीतल-दृष्टि से सप्रेम अवलोका। *3

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 168

2- वही, पृष्ठ - 54

3- मैथिलीशरणगुप्त - रंग में भंग ; सं० 2026 वि० ; पृष्ठ - 16

ननद-देवर और भाभी के सम्बन्ध

भारतीय समाज में देवर का स्थान अनुज तथा पुत्र के समकक्ष माना गया है। गोस्वामी तुलसीदास की भाँति गुप्तजी ने भी देवर लक्ष्मण का चित्रण विनम्र अनुचर के रूप में किया है। ननद-भाभी का सम्बन्ध भी अतिशय मधुर है। उनके परस्पर विनोद से परिवार सदैव प्रफुल्ल रहता है। लक्ष्मण भाभी के तिरस्कारपूर्ण वचन सुनकर भी क्षुब्ध नहीं होता। हेम-हरिण के रूप में मारीच राक्षस के कृत्रिम कातर स्वर को सुनकर सीता भ्रम-वश उसे राम का स्वर समझती है। वह पति के रक्षार्थ लक्ष्मण को वहाँ जाने के लिए तिरस्कार करती है। देवर अपनी भाभी के तिरस्कारपूर्ण वचन को सुनकर भी अपना धैर्य नहीं खोता, वरन कहता है :-

" रहा दास ही और रहूँगा
सदा तुम्हारा पद-सेवी!
उठा पिता के भी विल्द हैं,
किन्तु आर्य-भार्या हो तुम "।

लक्ष्मण को अपनी भाभी की चिन्ता है। वह जाते समय उसे विपद से बचने के लिए कुटी से बाहर जाने को मना कर जाता है :-

" जो हो, जाता हूँ मैं पर तुम
करना नहीं कुटी का त्याग
रहना इस रेखा के भीतर
क्या जाने अब क्या होगा। "[2]

प्रदक्षिणा में भाभी और देवर की सुन्दर झाँकी मिलती है। भाभी अपने देवर से हास्य-विनोद भी करती है। अग्रज राम से लक्ष्मण के यह कहने पर कि

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा; छब्बीसवाँ सं0, 2026 वि0 ; पृ0 - 43
2- वही, पृष्ठ - 43,44

मैंने आपके प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं किया, भाभी सीता विनोद करती हुई कहती है :-

" प्यार किया है तुमने केवल। "[1]

" प्रत्येक कन्या को नैहर के प्रति तीव्र आकर्षण रहता है। किसी भी अवस्था में वह नैहर जाने के लिए प्रस्तुत रहती है, किन्तु विवाह के पश्चात् वह अपने नैहर में अनचाहा अतिथि हो जाती है। भ्रातृवधू कभी भी ननद का नैहर में अधिक दिनों तक रहना या बार-बार आना पसन्द नहीं करती। सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि जो कन्या ननद के रूप में प्रतिक्षण नैहर जाना चाहती है वही भाभी के रूप में अपनी ननद को सहन नहीं कर सकती। "[2] किन्तु गुप्त जी ने उन्हें भी आदर्शीकृत किया है।

लक्ष्मण भी भाभी से परिहास करते नहीं चूकते। सीताजी ने आगन्तुक रमणी से विवाह कर लेने के सम्बन्ध में लक्ष्मण को नाना प्रकार की शिक्षा दी थी, किन्तु जब रमणी ने रामचन्द्र से ही विवाह करने का प्रस्ताव रखा तब सीताजी स्वयं असमंजस में पड़ गईं। भाभी को इस प्रकार झंझट में देखकर रामानुज ने मज़ाक करते हुए देवर ने कहा :-

भाभी,
है यह बात अलीक नहीं-
औरों के झगड़ों में पड़ना
कभी किसी को ठीक नहीं।
पंचायत करने आई थी
अब प्रपंच में क्यों न पड़ो,
चेत ही होना पड़ता है,
यदि औरों के लिए लड़ो॥ "[3]

1- मैथिलीशरणगुप्त - प्रदक्षिणा : छब्बीसवाँ सं0, 2026 वि0 पृष्ठ - 25

2- डा0 अणिमासिंह - मैथिली लोक गीत (शोधप्रबन्ध) पृ0 - 400-401

3- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी : 2028 वि0 : पृष्ठ - 53

वनवास की दीर्घ अवधि के पश्चात् देवर-भाभी तथा भाई-भाई का पुनर्मिलन आनन्द के अतिरेक को पार कर जाता है :-

" देवर-भाभी मिले, मिले सब भाई-भाई। "1

सीता अपने देवर को अत्यधिक स्नेह करती है। वन में पत्नी से वियुक्त रहने पर लक्ष्मण के मानसिक कष्ट को सीता भलिभाँति समझती है। तभी तो लक्ष्मण के यह कहने पर कि वह भाग्य में नहीं, वरन् पुरुषार्थ में विश्वास करता है, सीता उससे मज़ाक करती हुई कहती है :-

" रहो, रहो पुरुषार्थ यही है
पत्नी तक साथ न लाए
कहते कहते वैदेही के
नैन प्रेम से भर आए "2

सीता अपने देवर लक्ष्मण से हास परिहास करती है। लक्ष्मण और शूर्पणखा के संवाद का श्रवण कर सीता लक्ष्मण से कहती है :-

" और कहा- " सब बातें मैंने, सुनी नहीं तुम रखना याद;
कबसे चलता है बोलो यह, नूतन शुकरंभा-संवाद्" "3

सीता अपने देवर से आग्रह करती है कि वह रमणी हाथ में वरमाला लिए तुम्हें अर्पण करने आई है। इसके अतिरिक्त वह अपना तन, मन-धन सब कुछ तुम पर न्योछावर करना चाहती है। ऐसी अवस्था में तुम्हें इसका विरोध नहीं करना चाहिए :-

---

1- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 493

2- नहीं, मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी तिरसठवाँ सं. 2028 पृष्ठ - 68.

3- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवां सं०, 2028 वि० ; पृष्ठ - 48

" जो वर-माला लिये, आप ही,
तुमको वरने आई हो
अपना तन, मन, धन सब तुमको,
अर्पण करने आई हो,
मज्जागत लज्जा तज कर भी
जिस पर करे स्वयं प्रस्ताव
कर सकते हो तुम किस मन से
उससे भी ऐसा वर्ताव। "1

अवसर-आने पर परिहास करने में माण्डवी भी नहीं चूकती। दण्डक वन का वृत्तान्त सुनाते हुए शत्रुघ्न ने जिस समय कहा :-

" शूर्पणखा रावण की भगिनी
पहुंची वहाँ विमोहित सी।

तो - हँसी माण्डवी - " प्रथम ताड़का
फिर यह शूर्पणखा नारी,
किसी विडालाक्षी की भी अब,
आने वाली है वारी। "2

देवरानी-जिठानी

भारतीय संयुक्त परिवार में देवरानी-जिठानी का सम्बन्ध बहन-बहन जैसा पाया जाता है। सीता शूर्पणखा को अपने प्रिय देवर से विवाह करवा कर

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवाँ सं0, 2028 वि0 ; पृष्ठ - 45
2- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि0 ; पृष्ठ - 413

अपनी देवरानी बना लेना चाहती है। पद में बड़ी होने के कारण वह देवर की वधू से श्रम नहीं करवाना चाहती। गृह के समस्त कार्यों को वह स्वयं करने का प्रण करती है। वह होने वाली देवरानी से कहती है :-

" घर करना होगा न तुम्हें कुछ
सभी काम कर लूँगी मैं
परिवेषण तक मृदुल करों से
तुम्हें न करने दूँगी मैं। "1

" ननद का भाभी से परिहास करने का प्रसंग " साकेत " में अवश्य नहीं आ सका है, किन्तु ननद को लेकर किये गए उपर्युक्त परिहास में ननद-भाभी के मधुर सम्बन्ध की व्यंजना अवश्य हो गई है। देवर-भाभी और ननद-भाभी के हास-परिहास का यह रूप " वाल्मीकीय रामायण " तथा तुलसी कृत " राम-चरित-मानस " में उपलब्ध नहीं है। "2

साकेत में ननद-भाभी के मधुर सम्बन्धों की झाँकी द्रष्टव्य है। एक दिन अशोक को देखकर लक्ष्मण ने उर्मिला पर कटाक्ष किया था :-

" प्रिय ने कहा था- प्रिये, पहले ही फूला यह,
भीति जो थी इसको तुम्हारे पदाघात की। "3

उर्मिला भी उत्तर देने से नहीं चूकती। वह तुरन्त " सती शान्ता को सुनाकर" कर ऐसा उत्तर देती है कि पति को निरुत्तर रहना पड़ता है :-

" भूलते हो नाथ, फल फूलते ये कैसे, यदि
ननद न देतीं प्रीति पद-जलजात की। " 4

1- मैथिलीशरणगुप्त - पंचवटी ; तिरसठवां सं०, 2028 वि० ; पृष्ठ - 42
2- श्रीरामस्वरूप दुबे - साकेत-सुधा ; प्रथम सं० सन् 1962 ; पृष्ठ - 70
3- मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 314
4- वही, पृष्ठ - 314

परिवार में सौत एक साथ रहकर परस्पर मधुर व्यवहार करती पाई जाती हैं। छोटी सौत बड़ी को जीजी कहकर सम्बोधित करती है :-

"जीजी। विकल न हो अब यों।
आशा हमें जिलावेगी,
अवधि अवश्य मिलावेगी। "।

---

1 - मैथिलीशरणगुप्त - साकेत ; 2025 वि० ; पृष्ठ - 109